युक्रांद

धर्म क्या है?
धर्म है जीवन की कला।
लेकिन, जीवन की कला केवल वे ही सीख पाते हैं, जो कि प्रतिपल मरने को तैयार रहते हैं।
वस्तुतः तो मृत्यु की कला ही जीवन की कला भी है।
बीज मरता है तो वृक्ष जन्मता है।
और सरिता मरती है तो सागर।
इसलिए ही तो मैं कहता हूं कि पाना है तो खोओ।
खो जाओ यदि खोजना है तो।
क्योंकि, जो स्वप्न की भांति मिटता है, वह सत्य की भांति प्रगट होता है।
अहं की मृत्यु ही दूसरी ओर से ब्रह्म का सिंहासन है।
मित्र! पाना है सिंहासन न?
तो चलो — चढ़ो सूली।

२५/६/६७

Phone : 293070
Cable : Vidushak
Bombay

We Assure Our Best Services
For All Time
To Come
WITH BEST COMPLIMENTS
FROM

ASSOCIATED BUSINESS CORPORATION

Court Chambers, 2nd Floor
35, New Marine Lines,
Bombay - 20 BR.

तीन नए आयाम

प्रेम, सागर का तट और परमात्मा

*** प्रश्न : आप 'प्रेम' व 'क्रोध', जब जो आये, दोनों को ही स्वीकार करने की बात करते हैं। बुद्ध तो प्रेम की ही बात करते थे। कृपया इसे स्पष्ट करें।**

बुद्ध जिस प्रेम की बात करते हैं, उस प्रेम से हम परिचित नहीं हैं। हम जिसे प्रेम कहते हैं, वह क्रोध का ही दूसरा छोर है। वस्तुतः वह दो नहीं, एक ही है। वह एक ही चीज के दो नाम हैं। बुद्ध जिस प्रेम की बात करते हैं, वह बात ही और है। वह दूसरी बात है। इसीलिए वे प्रेम नहीं, करुणा कहते हैं। इसीलिए महावीर उसे अहिंसा कहते हैं। लेकिन मेरी दृष्टि में जीसस ने प्रेम ठीक कहा। क्योंकि करुणा में दूसरा छोर हो जाता है। अहिंसा नकारात्मक शब्द है। प्रेम ही शब्द ठीक है, मगर वह प्रेम एकदम भिन्न बात है। हम जिसे प्रेम कहते हैं, वह उससे बहुत दूसरी बात है। हमारा प्रेम और क्रोध एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। वह एक ही है। इसीलिए मैं कहता हूं कि उसे खण्डों में विभक्त न करें। उन दोनों को ही स्वीकृति दें। उस सम्पूर्ण की स्वीकृति हमें एक दिन उस प्रेम से भी परिचित करा सकती है, जिसकी बुद्ध बात करते थे। जिसे बुद्ध जानते थे। लेकिन उसे खण्डों में विभाजित करके तो हम उस प्रेम से कभी परिचित नहीं हो सकेंगे।

*** प्रश्न : जब परमात्मा सब जगह ही है, तो तट छोड़कर सागर में डूबने की बात आप क्यों कहते हैं? क्या परमात्मा तट पर नहीं है।**

मैं आंख बन्द किये हूं, तो अंधकार दिख रहा है। आंख खोलता हूं तो प्रकाश दिखता है। आंख बन्द होने पर भी प्रकाश तो है ही, मगर वह दिखलाई नहीं पड़ता। निश्चित ही परमात्मा भी सब जगह है, मगर वह डूबे बिना दिखाई नहीं पड़ता। और एक बार डूबकर जब वह जान लिया जाता है तभी जाना जाता है कि वह तट पर भी है, सब जगह है, वह ही है। तब सागर में डूबे रहकर भी हम तट पर होते हैं, और तट पर होकर भी सागर में होते हैं। अतः सवाल प्रकाश के होने का नहीं है; सवाल है आंख के खुली या बन्द होने का। आंख बन्द हो तो प्रकाश नही है। हो भी, तो नहीं है। आंख खुली हो, तो प्रकाश ही है। तट व सागर में भेद ही नहीं है। मगर वह आंख खुलती है, डूबकर ही। और समाधि ही वह सागर है, शून्य ही वह सागर है। विचार ही है तट। विचार के तट को छोड़ते हीं शून्य सागर में उतर जाना होता है। तब पता चलता है कि पहले भी वही था, अब भी वही है। मगर पहले आंखें बन्द थीं, अब आंखें खुली हैं, तो प्रकाश ही है।

*** प्रश्न : क्या आपको परमात्मा मिल गया है?**

किसे मिल गया है, किसे नहीं, सवाल यह नहीं है। असली सवाल है तुम्हारी प्यास! क्या तुम्हारे भीतर प्यास है? अगर प्यास है, तो खोज ही लोगे। और कोई कहे कि हां मिल गया है तो उससे तुम्हें

क्या फर्क पड़ने वाला है ? कोई तुम्हें दे तो नहीं सकता न ! फिर परमात्मा के मिल जाने का दावा करने वाले भी तमाम हैं, किस किस के पीछे भागोगे ? अभी एक जगह सभा थी, तो वहां तीन ऐसे लोग आए हुए थे, जो परमात्मा के मिल जाने का दावा करते थे । आखिर में तीनों परमात्माओं में झगड़ा भी हुआ । परमात्मा का कोई दावा नहीं होता । वह तो सहज विनम्र होता है । मगर असली सवाल तो यह है कि क्या तुम्हें प्यास है ? तुम्हें प्यास है या मेरी बातें सुनकर प्यासे हो गये हो ? अक्सर तो लोगों की प्यास भी अपनी नहीं होती । अपने भीतर उस प्यास को ही खोजो । और अगर वहां प्यास है तो तुम खोज ही लोगे । बिना खोजे रह ही नहीं सकते । रहने का दूसरा कोई उपाय नहीं है । फिर जिस दिन उसे पावोगे, उसी दिन तुम्हें वह भी दीख पड़ेगा कि किसे मिल गया है, किसे नहीं मिल गया है । अभी तो मुझे देखकर तुम्हारी समझ में जो आता हो, वही ठीक है ।

***

(आचार्य श्री की प्रश्नोत्तर वार्ता से
प्रस्तुतकर्त्ता : शिव)

क्रांति से शांति

(विद्यार्थियों को दिशा उद्‌बोधन)

विद्यार्थी—समाज में शांति का अत्यधिक आवश्यकता है ।
लेकिन, बिना आमूल क्रांति के शांति असंभव है ।
अशांति अकारण नहीं है ।
समाज सड़ गया है ।
उसकी सारी व्यवस्था ही मृत हो गई है ।
सिद्धान्तों की मुर्दा भीड़ ने जीवन को असंभव बना दिया है ।
अशांति इसीलिए है; क्योंकि अतीत और और भविष्य में संघर्ष हो रहा है ।
शांति के दो उपाय हैं :
एक कि हम मृत अतीत में लौट जावें; जो कि आत्मघात है ।
और, दूसरा कि हम मृत अतीत से मुक्त हों और भविष्य के स्वागत की तैयारी करें ।
पहला उपाय जो शांति देगा, वह मरघट की ही शांति होगी ।
इस उपाय से बचना ।
मरघट की शांति से तो जीवन्त अशांति ही बेहतर है !
लेकिन, निराशा का कोई कारण नहीं है, क्योंकि दूसरा उपाय भी है ।
उसके लिए ही विद्यार्थियों को तैयार होना है ।
'क्रांति से शांति'—बस यही सम्यक् नारा हो सकता है ।

***

आचार्य श्री की वैचारिक क्रांति—मार्ग क्या ?

संकलन — श्रीमती जयवन्ती, जूनागढ़

● कुछ मित्रों के बहुत से प्रश्न हैं कि यह जो मैं कह रहा हूं, इसे कैसे अधिकतम लोगों तक पहुंचाया जा सके ? क्या रास्ता हो ? क्या मार्ग हो ?

इसे थोड़ा समझ लेना उपयोगी होगा । पुराने रास्ते भी बातों को पहुंचाने के रहे हैं । जो सब गलत साबित हुए हैं । और अक्सर यह होता है कि नयी बात को भी अगर हम पहुंचाना चाहें तो पुराने ही रास्तों से पहुंचाना शुरू करते हैं । और पुराना रास्ता फिर नयी बात को भी पुरानी कर देता है ।

पुराने रास्ते यह रहे हैं कि संगठन बनाओ, आर्गनाइजेशन करो । जो एक मत को मानते हों वो इकट्ठे हो जायें । वह चारों तरफ एक दिवाल खींच लें और एक दूसरों से अलग हो जायें, भिन्न हो जायें । यह पुराने विचार को फैलाने का रास्ता था । इससे विचार कुछ फैले, लेकिन उससे मनुष्यता खंडित हो गयी । **और मनुष्यता का खंडित हो जाना किसी भी विचार को फैलाने से ज्यादा महंगा मामला है ।** कोई विचार फैले न फैले यह उतनी बड़ी महत्व की बात नहीं है लेकिन आदमी खंडों में टूट जाय, यह बहुत खतरनाक है । फिर जो लोग संगठित हो जाते हैं, आर्गनाइज हो जाते हैं, संप्रदाय बना लेते हैं, समुदाय बना लेते हैं, संस्था बना लेते हैं, वे धीरे धीरे विचार करना बंद कर देते हैं । ये विचार करना बन्द कर देते हैं क्योंकि दस आदमियों को इकट्ठा होके अगर सहमत होना हो तो विचार करना मुश्किल है । विचार असहमति लाता है जितना हम विचार करेंगे उतना ही दूसरे से राजी होना एकदम आसान नहीं रह जायगा । सिर्फ अविचारशीलों की भीड़ इकट्ठी की जा सकती है । बुद्धिमानों की भीड़ इकट्ठी करनी मुश्किल बात है, तो जल्दी भीड़ इकट्ठी की जाती है तो भीड़ बुद्धू हो जाती है, क्योंकि इकट्ठी होने में सब खतम हो जाता है । व्यक्ति टूट जाता है फौरन । जैसे एक आदमी ने कहा मैं हिन्दू हूं, वह आदमी व्यक्ति की तरह खतम हो गया । हिन्दू होने का जो अर्थ है वह उसने स्वीकार कर लिया । अब वह व्यक्ति नहीं रहा । हिन्दू भीड़ का एक हिस्सा हो गया । जिसने कहा मैं मुसलमान हूं, उसने कहा मैं अपने को खोता हूं । तुम्हारी बड़ी भीड़ का जो संकेत है मुसलमान, वो मैं स्वीकार करता हूं । और जो मुसलमान होने का अर्थ है वो स्वीकार करता हूं । मुसलमान होने का अब मुझे संदेह नहीं है, मुझे विचार अब नहीं करना है, मैं पहुंच गया, जो ठीक था वह मैंने पा लिया, बात खतम होती है । मैं सम्मिलित होता हूं, मैं स्वीकार कर लेता हूं । जो आदमी मुसलमान बन गया वह आदमी, आदमी नहीं रह गया । सिर्फ एक संस्था का सदस्य हो गया । उसने अपने को खो दिया, खतम कर दिया ।

तो मेरी बात कोई संस्था, कोई संगठन बनाके नहीं पहुंचानी है । मुश्किल मामला है, फिर पहुंचना मुश्किल है । संस्था न हो तो बात कैसे पहुंचे ? और संस्था और संगठन के मैं बिलकुल दुश्मनी में हूं । बात पहुंचे कि न पहुंचे यह उतना मूल्य का नहीं है । संस्था नहीं बनानी है । संस्था बनी कि उसके स्वार्थ आये । स्वार्थ आये कि जो हम पहुंचाना चाहते थे वो गया । संस्था के पद आये, प्रतिष्ठा आयी, संघर्ष आया, चुनाव आया पोलिटिक्स आयी । कोई संस्था बिना पोलिटिक्स के नहीं हो सकती । व्यक्ति हो सकता है बिना राजनीति के,

संगठन कभी बिना राजनीति के नहीं हो सकता। संगठन में राजनीति होगी ही। राजनीति वही नहीं है कि जो राज्य के लोग करते हैं। राजनीति वह है जो कोई भी समूह पद प्रतिष्ठा के लिये करता है। भीतरी राजनीति होती है। अगर पाँच सौ साधु मिलेंगे तो भीतरी राजनीति शुरू हो जायगी। कि कौन आचार्य बनेंगे ? कौन उपाचार्य हो ? फिर कब आचार्य मरे ! फिर कौन दूसरा उसकी जगह ले ! वह राजनीति उतनी ही सख्त कि जितनी राष्ट्रपति की होगी, प्रधान मंत्री से उसमें कोई फर्क नहीं। एक छोटा ग्रुप है, जिसके भीतर खेल चलेगा। जहाँ संगठन हुआ वहां राजनीति होगी। इसलिये मैं कहता हूं संगठन मात्र पोलिटिकल होते हैं कोई धार्मिक संगठन हो ही नहीं सकता। धार्मिक संगठन भी हुआ तो फौरन राजनीतिक हो जायेगा। नाम धर्म का रहेगा, भीतर राजनीति शुरू हो जायगी। संगठन नहीं बनाना है कोई भी।

इसलिये बड़ा दुष्कर काम है। बड़ा कठिन काम है। व्यक्ति की हैसियत से क्या हम कर सकते हैं ? जो बात ठीक लगती हो और वह इसलिये नहीं कि मैं कहता हूं अगर मैं कहता हूं और आपको ठीक लग जाती है, आप नहीं सोचते तो आप खतरनाक आदमी हैं। आप नुकसान पहुंचायेंगे। क्योंकि तब आप तोते की तरह दोहरायेंगे। जो कि सदा से हो रहा है। महावीर ने क्या कहा उनके मुनि उसको दोहराये चले जा रहे हैं। उनमें से एक ने भी उसे जानने की फिक्र नहीं की है कि वो क्या है ? क्योंकि वो महावीर की आलोचना करने में ही डर गये हैं। असमर्थ हो गये हैं। वह डर गए कि महावीर की आलोचना तो हो नहीं सकती। महावीर तो सर्वज्ञ हैं। जो कह गये वो ठीक है। वो इसलिये ठीक नहीं है कि ठीक है, वह इसलिये ठीक है कि महावीर ने कहा है। तो बुद्धने कहा है, मुहम्मद ने कहा है, कृष्ण ने कहा है। वह ठीक होके बैठ गया है, अब उसको प्रचार करना है। ऐसा आदमी विचारशील नहीं होगा। और ऐसा आदमी विचार को कम पहुंचाता है, अविचार ज्यादा पैदा करवाता है। वह जिसको भी सिखा पढ़ा के राजी कर लेगा, उसने एक आदमी को और अविचार में डाल दिया। एक आदमी की और बुद्धि नष्ट की।

मैं जो कह रहा हूं, कोई वैसा ही उसे सब तक पहुंचा देना है यह सवाल नहीं है। कोई जरूरत भी क्या है ? एक आदमी को जो ठीक लग रहा है कह रहा है। वह सभी को ठीक लगे यह अनिवार्य कहां है ! इसकी मांग क्यों होनी चाहिये कि बस सभी को ठीक लगे ! जानके आप हैरान होंगे कि जिस आदमी को यह फिक्र होती है कि जो मुझे ठीक लग रहा है, वह सबको ठीक लगना चाहिये, उस आदमी को भीतरी रूप से शक होता है कि जो मुझे ठीक लग रहा वह ठीक है या नहीं। वह दूसरों को समझा के खुद कन्वीन्स हो जाना चाहता है कि नहीं जरूर ठीक है, जब इतने लोगों को ठीक लगने लगा है तो गलत नहीं हो सकता। इसलिये आदमी अनुयायी खोजता है। **जिस आदमी को अपने सत्य पर श्रद्धा नहीं है, वह अनुयायी खोजता है।** जितने अनुयायी बढ़ते जाते हैं उतनी उसकी भी आस्था पक्की होती चली जाती है, कि जब इतने लोगों को ठीक लग रहा है, तो बात ठीक ही होनी चाहिये। उसका करेज उसका साहस बढ़ता चला जाता है। मैं तो अकेले आदमी की तरह यह कहना चाहता हू, जो मुझे ठीक लग रहा है। उसमें आप मेरे पास आते हैं कि नहीं आते हैं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ने पाता। अकेले जंगल में बैठूंगा तो वह इतना ही ठीक है, मेरे पास करोड़ आदमी इकट्ठे हो जायें तो वह उतना ही ठीक है। इसमें रत्ती भर फर्क भीड़ से नहीं पड़ने का है। इसलिये भीड़ की कोई साइकोलाजिकल डिमान्ड नहीं है। कोई मनोवैज्ञानिक कमी नहीं है, भीतर मेरे मन में, कि उसे भीड़ से पूरा कर लेना है। इसलिये भीड़ इकट्ठी करने की कोई बात नहीं। और आप भी भीड़ इकट्ठी करने के प्रयोजन को भी मत लेना अपने मन में। बात जो ठीक लगती है उसे दूसरे से निवेदन कर देना है और निवेदन भी इसलिये नहीं कर देना है कि वह कन्वीन्स हो जाय, कि वह राजी हो। निवेदन इसलिये कर देना है कि यह हमारे मानवीय होने का हिस्सा है कि जो मुझे ठीक

लगे वह मेरे साथ मर न जाय, उसे मैं बाँट दूं। हो सकता है वह किसी के काम आ जाय, हो सकता है किसी के काम न आये। उसे मैं Share कर लूँ बस। उसमें दूसरे को भी साझीदार बना लूँ। मुझे ठीक लगी है एक बात, उससे मुझे आनन्द मिला है। आप भी मेरे पड़ोस से गुजर रहे हैं, मैं आपसे कह दूं कि एक बात से मुझे आनन्द मिला है, हो सकता है आपको मिल जाय, सोचना, बात खतम हो गयी, इससे ज्यादा कुछ लेना देना नहीं है। क्योंकि जैसे ही हमने बात की और शर्त रखी कि हमारी बात अगर ठीक लगी तो हमारे संगठन में आओ। हमारी बात ठीक लगे तो यह करो और यह मत करो, कि हमें बात से कम संबंध रह गया, बात के पीछे कुछ और चीजों और स्वार्थों से ज्यादा सम्बन्ध हो गया। उनको बिलकुल नहीं लेना है। आज एक ईसाई दूसरे को ईसाई बना रहा है। यह मतलब नहीं है कि उसे ईसा से कोई आनन्द मिल गया है वो दूसरे को बांटने के लिये उत्सुक है। प्रयोजन बिलकुल दूसरे हैं न उसे कोई आनन्द दिखाई पड़ रहा है और वह दूसरे को ईसाई बनाये चला जा रहा है। प्रयोजन बहुत दूसरे है अब। भीड़ बढ़ाने के, शक्ति बढ़ाने के, संगठन बढ़ाने के, राजनीति के, दुनिया की पोलिटिक्स के पीछे हिस्से हैं। नहीं, किसी को अगर ईसा से आनन्द मिला हो तो उसे हक है कि दूसरे को कह दे कि यह आनन्द मिला, लेकिन ईसाई क्यों बनाने की फिक्र में पड़े हैं। ईसाई बनाने से क्या संबध हैं? ईसा से कोई आनन्द, बिना ईसाई बने लिया जा सकता है। इसलिये न तो कोई संप्रदाय खड़ा करना है, न कोई मत, न लोगों की भीड़। **मेरी बात से अगर आपको लगता हो, कि कोई आनन्द आपको दिखाई पड़ता है, मुझे दिखाई पड़ता हो तो भी आपको खबर नहीं ले जानी है। आपको भी कोई आनंद मेरी बात में अनुभव होने लगे तो यह मानवीय जुम्मेदारी है। यह मनुष्य होने का हिस्सा है कि मैंने कोई आनन्द पा लिया हो तो वह मेरे साथ न मर जाय, उसकी खबर मैं फैलाता हूं।** वह किसी को शायद काम पड़ जाय। बेकार होगा तो काम नहीं पड़ेगा बात खतम हो जायगी, हवा में खो जायगी। काम आयेगी तो चल पड़ेगी। लेकिन अनाम न उसका नाम होगा बात का, न कोई संगठन होगा, न पीछे कोई बंधने का सवाल होगा, न हमारी कोई माँग होगी, न कोई सबंध होगा, कोई अनुयायी इकट्ठे नहीं करने हैं। कैसे फिर इस बात को पहुंचाना है। तो अपने अपने तईं सोचना चाहिये। मैं क्या कर सकता हूं? अगर कोई बात मुझे आनन्दपूर्ण लगी तो मैं क्या कर सकता हूं? **पहला तो काम यह है कि उसे मैं जीना शुरू करूं। क्योंकि जीने की सुगन्ध ही उसे पहुंचायेगी। मेरे कहने से वह नहीं पहुंच जायेगी। मेरे जीने की सुगन्ध उसे पहुंचायेगी।** अगर आप इसे जीयेंगे तो आपकी पत्नी पूछेगी कि क्या हो गया? तुम आदमी दूसरे हो गये हो तुम्हारा क्रोध कुछ और हो गया। तुम्हारा प्रेम कुछ और हो गया। तुम पति कुछ और हो गये, तुम पिता कुछ और हो गये, क्या हो गया है। जब एक व्यक्ति में थोड़े से भी फर्क आते हैं, तो उसके चारों तरफ पूछ शुरू हो जाती है कि हो क्या गया है? **और अगर वह फर्क आनन्दपूर्ण है तो दूसरों में भी प्यास जगती है कि क्या हो गया है।** तो निवेदन कर देना है, किसी पर थोप नहीं देना है। निवेदन कर देना है, यह कर रहा हूं, यह सोच रहा हूं, इससे कुछ हो रहा है, तुम भी सोचो, शायद कुछ हो सके। ठीक लगता हो साहित्य पहुंचा देना है। ठीक लगता हो, हो सकता है कई बार आप न समझा सकते हों, और ठीक लगता हो, क्योंकि समझाना ठीक अलग बात है, ठीक लगना बिलकुल अलग बात है। जरूरी नहीं है कि जिसको ठीक लग जाय वह समझा भी सके। और यह भी जरूरी नहीं है कि जो समझा सकता हो, उसको कुछ ठीक लग गया हो। यह बिलकुल जरूरी नहीं है। यह दोनों बातें अलग हैं। कभी ठीक आदमी में हो भी सकती हैं, अक्सर नहीं होतीं। बुद्ध से किसी ने पूछा था कि आपके साथ दस हजार भिक्षु हैं, इनमें से कितने लोगों को वह ज्ञान उपलब्ध हो गया है, जो आपको हुआ है? बुद्ध ने कहा बहुतों को। उन्होंने कहा पर वो पहचान में नहीं आते, तो बुद्ध ने कहा कि फर्क इतना है कि मैं बोलता हूं इसलिये तुम पहचान लेते हो, वो चुप हैं, इसलिये तुम नहीं पहचानते। मैं भी चुप होता तो मुझे भी नहीं पहचानते। बहुतों को

हुआ है। पृथ्वी पर बहुत लोगों ने सत्य जाना है। जितने नाम हम गिनाते हैं उतने ही नहीं, वह तो बहुत कम संख्या है। वह तो सिर्फ उन लोगों की संख्या है जिन्होंने सत्य जाना और साथ में टीचर होने की जिनकी संभावना थी। साथ में जो शिक्षक भी हो सकते थे। जो कह भी सकते थे, संवादित कर सकते थे, समझा सकते थे। लेकिन जितने हम नाम जानते हैं, उतने में सबको हुआ भी नहीं है कुछ तो उसमें ऐसे भी हैं जो सिर्फ समझा सकते थे। जिनको हुआ कुछ भी नहीं है। तो हमारे बड़े नामों में सब सच भी नहीं हैं और हमारे बहुत छोटे नामों में जो खो गये हैं, बहुत सच थे। इनका कोई पता नहीं चलता। **दुनिया में सत्य जानने वाले सभी लोगों का पता नहीं चलता है।** क्योंकि हमें पता तो बोलने से चलता है, और कोई उपाय नहीं है। तो जरूरी नहीं है कि आपको हो जाय ख्याल, तो आप समझा भी सकें। बहुत बार ऐसा होता है कि गूंगे का गुड़ हो जाता है। लगता है कि कुछ समझ पड़ रहा है लेकिन कैसे कहूं! और जब कहने को जाते हैं और दूसरा तर्क उठाता है तो बड़ी मुश्किल हो जाती है कि कैसे समझाओ उसको? पीड़ा होती है लेकिन समझाना बहुत मुश्किल हो जाता है। तो मेरे टेप हैं वो आप सुना दे सकते हैं। किताबें हैं वह आप पहुंचा दे सकते हैं। लेकिन इतना ही ध्यान रख के, कि वह सुना देना है, आग्रह कोई भी नहीं। सुना के चुपचाप वापिस लौट आना है। यह भी नहीं पूछना है कि कैसा लगा? यह पूछने में भी आग्रह शुरू हो जाता है। जानने का मन होता है हमारा, कि किसी को हम पूछें कि कैसा लगा? इतना भी आग्रह गलत है। बात खतम हो गयी है, उसे कुछ लगा होगा वह कहेगा। उसके भीतर से आने दो। नहीं लगा होगा, बात समाप्त हो गई है। यह पूछना क्यों है! हो सकता है इस पूछने में उसे कहना पड़े कि अच्छा लगा। **हम इतने शिष्टाचार से भर गये हैं कि असत्य भी शिष्टाचार बन गया।** और अधिक शिष्टाचार असत्य ही है। सुबह एक आदमी पूछता है कहिये कैसे हैं? हम कहते हैं बहुत अच्छे है। उसको तो धोखा होता ही है, सुनके हमको भी धोखा होता है। शिष्टाचार भर है शायद वो भी जानता है कि कौन अच्छा है। अगर शिष्ट हो तो पूछना नहीं चाहिये कि कैसे हैं। क्योंकि दूसरे आदमी को क्यों दिक्कत में डालना, अगर वह ठीक न हो तो कहने में मुश्किल पड़ती है।

जापान में छोटे-छोटे बच्चों को वह सिखाते हैं, किसी की तनखा कभी मत पूछना। क्योंकि हो सकता है तनखा बहुत कम हो और तुमने पूछ लिया कि कितनी तनखा है? तो तुम उसे दिक्कत में डाल दो, चार आदमियों के बीच में कहने में उसे संकोच हो कि पचास रुपये महीना। हीनता लगे। और या उसे झूठ बोलना पड़े कि पांच सौ रुपये महीना। तो अकारण उसे संकोच में क्यों डालना! ऐसा प्रश्न क्यों खड़ा करना! (लेकिन हमारा मुल्क तो बहुत अद्भुत है। हम तो न केवल यह पूछते कि तनखा कितनी है, यह भी पूछते हैं कि ऊपर से भी कुछ मिल जाता है कि नहीं? पूछते ही नहीं हैं, वह आदमी भी कहता है कि हां——(जोरों का ठहाका, हास्य) बड़ा अच्छा, अजीब सा है यह सब। बुरा है, अशुभ है, अयोग्य है। लेकिन ख्याल में नहीं है, बोध में नहीं है।) किसी को टेप सुना दिया, किसी को किताब दे दी, यह भी नहीं पूछना है कि कैसा लगा? बात खतम हो गयी, आपका काम पूरा हो गया। उसे कुछ लगा होगा कहेगा, नहीं कहेगा। कई बार लग भी सकता है और न कहे। **कई बार तो ऐसा होता है, जब बात कोई बहुत गहरी लग जाती है तो कहने तक का मन नहीं होता। कोई पूछता है तो भी बुरा लगता है।** कहने का भी मन नहीं होता। तो खबर भर पहुंचा देनी है। टेप सुना देना है। किताब पहुंचा देनी है। खबर भर पहुंचा देनी है। कोई बांधना नहीं है किसी को। **और व्यक्ति को, व्यक्ति की हैसियत से खबर पहुंचा देनी है।** किसी संगठन के सदस्य की हैसियत से नहीं। निश्चित ही, दस मित्रों को ठीक लगेगा और दस मित्र बैठके बात करेंगे। तो वह दस मित्र ही हैं, एक संगठन नहीं, यह ध्यान में रखना। दस मित्र एक संगठन नहीं, पचास मित्र एक संगठन नहीं। और मित्रता एक मुक्ति है। मित्र की एक स्वतंत्रता है। उसे मेरी सब बातें ठीक नहीं भी लग सकतीं एक बात

ठीक लग सकती है, उतनी मैत्री भी चल सकती है। हमारा यह भी आग्रह होता है मन में कि राजी होंगे तो पूरे के लिये और नाराजी होंगे तो पूरे के लिये। यह भी बड़ी नासमझी है। यह बिल्कुल गलत है। एक आदमी मेरी एक बात से नाराज हो जाता तो मेरी सारी बातों से नाराज हो जाता है। और यदि एक आदमी मेरी एक बात से राजी हो जाता तो सबसे राजी हो जाता है बुद्धि हीनता है यह। मेरी जिस बात में राजी नहीं हैं उसमें दोस्ती नहीं सही। चलेगा; इसमें हर्ज क्या है? छोड़ो उस बात को, इससे हमारा मेल नहीं पड़ता। जिस बात से राजी हो उसमें दोस्ती चल सकती है। एक छोटी सी बात में दोस्ती चल सकती है। और आग्रह ही नहीं करना चाहिये कि सबमें मेल होगा तभी दोस्ती चलेगी। यह आग्रह बहुत डिक्टेटोरियल है। यह आग्रह बहुत तानाशाही से भरा हुआ है। तो गुरु भी कहता है कि पूरे राजी हो जाओ मुझसे, और शिष्य भी कहता है कि पूरे राजी होंगे। मगर पूरे का सवाल क्या है? जिंदगी सब अधूरी है, यहां पूरा कुछ भी नहीं होता। पूरा सब मोक्ष में होता है। यहां पूरा होता ही नहीं। पृथ्वी पर सब अपूर्ण है। यहां दोस्ती अधूरी है, प्रेम अधूरा है यहां प्रेम भी पूरा नहीं, दोस्ती भी पूरी नहीं। यहां कोई चीज पूरी हो नहीं सकती पृथ्वी पर। [पृथ्वी के होने में अपूर्णता है। यानी पृथ्वी पर अस्तित्व ही अपूर्ण का हो सकता है। पूर्ण जैसे ही कुछ हुआ, पृथ्वी के बाहर गया। इसलिये हम पूर्ण को मोक्ष भेज देते हैं। फिर उसको वापिस नहीं बुलाते। बुलाने का सवाल नहीं, बात खतम हो गयी। बुद्ध गये, महावीर गये, राम गये, वो गये। वे एकदम खो जाते हैं। जैसे ही कोई पूर्ण हुआ, वह छुटकारा पा जाते हैं इस जगत से। **इस जगत में होना, अपूर्ण होना है।** इसलिये किसी चीज में पूर्ण की जिसने मांग की वह नासमझी में पड़ जाता है। पति ने अगर पत्नी से कहा, पूरा प्रेम मेरी तरफ, मुश्किल शुरू हो जायगी खतरा हो गया, क्योंकि यह बात ही गलत है। असंभव है। और असंभव की चेष्टा में जो थोड़ा बहुत प्रेम हो सकता था, वह मर जायेगा। वह भी नहीं हो सकेगा। किसी मित्र से कहा कि पूरी मित्रता, दुश्मनी की शुरूआत हो गयी। यह दुश्मनी का ही गेस्चर, यह मांग कि पूरी मित्रता चाहिये। यह पूरे का सवाल नहीं है। तो मुझसे पूरे राजी होने की बात ही नहीं है जरा भी। जिस काम भर में भी आप राजी हों, और ठीक लगे और आनंद मालुम पड़े, उसको पहुंचा देना है दूसरे तक। वह आप तक खतम न हो जाय। उसकी सुगंध, सुवास दूसरे तक पहुंच जानी चाहिये।

यह जीवन जागृति है, यह सब मित्रों का मिलन भर है। कोई संस्था नहीं। जिस मित्र की मौज हो कभी भी खिसक जाय। इससे लोग मुझे पूछते हैं कि फलां आदमी नहीं दिखाई पड़ता है, यह कोई संस्था थोड़ी है कि यहां आदमी दिखाई पड़ना ही चाहिये। उसकी मौज थी तब तक दिखाई पड़ता था, मौज नहीं है, नहीं दिखाई पड़ता। इसमें क्या लेना देना है? उसको पूछना कहां जाना है कि आप क्यों दिखाई नहीं पड़ते। यह बात ही गलत है। जिसकी मौज थी वह आता, जिसकी मौज नहीं वह नहीं आता। तो ठीक है कोई आयेगा, कोई जायेगा, यह मित्रों का मिलन है, इससे ज्यादा नहीं है। दरवाजे सब खुले हैं, कहीं से कोई दिवाल नहीं। कहीं से भी प्रवेश करें, कहीं से कोई बिदा हो जाये। उससे जाते वक्त भी मत पूछना; हो सकता है संकोच में रुकना पड़े। पूछना ही मत। चला जाय तो चले जाने देना, आ जाय तो आ जाने देना। आ जाय तब भी मत पूछना कि दो वर्ष कहाँ थे? यह सारी माँग गलत है। और सारी माँग संगठन की है, संगठन की मांग ही नहीं अपनी। मित्रों का मिलन है, दस मित्र आज हैं, कल बारह हैं, पन्द्रह हैं, कल दो हैं, यह सब जिंदगी ऐसे बदलती है। ऐसे ही चलती है गंगा कहीं बिलकुल पतली है कहीं बहुत भारी हो जाती है, कहीं सूख जाती है, कहीं रेत ही रेत दिखाई पड़ती है, कहीं सागर हो जाती है। जिंदगी ऐसे ही चलती है। इसमें कुछ आग्रह जरा भी रखने की जरूरत नहीं। एक आदमी आये तो सुख नहीं दुःख नहीं, एक आदमी जाये तो दुःख नहीं सुख नहीं। जितनी देर सहज था कि साथ चल सकें साथ चल लिये, फिर रास्ते अलग हो गये हैं, वह अपने रास्ते चला गया है।

हो सकता है कल फिर रास्ते कट जायें और फिर मिलन हो जाये तो इसमें दुश्मनी क्या लेनी है कि बीच में कहाँ थे ? इसको ध्यान रखें और एक एक व्यक्ति सोचे। मैं कुछ कहूं कि ऐसा ऐसा करें यह सवाल भी नहीं है। सोचें कि क्या कर सकते हैं। एक एक आदमी इतनी बड़ी शक्ति है कि इतना कर सकता है, जिसका हिसाब नहीं।

लोग मुझसे पूछते हैं कि आपके पास कोई संगठन नहीं, क्या होगा ? मैंने कहा यह सवाल ही नहीं, संगठनों से भी क्या हो सका ? अकेला चिल्लाता रहूंगा। कुछ और चिल्लाने वाले मिल जायेंगे। वह भी चिल्लाते रहेंगे। लाख दो लाख अकेले अकेले भी चिल्लायें तो भारी आवाज पैदा हो जायगी। कोई इकट्ठे ही चिल्लाने की जरूरत थोड़ी है ? कोरस की जरूरत नहीं है। कोरस में इकट्ठे ही गाने की जरूरत नहीं है कि सब इकट्ठा ताल पीट ठोंक के वह सब इकट्ठे ही गायें। अकेला भी चलेगा एक एक गीत भी चल जाता है। और दुनिया में जो हिम्मतवर लोग थे, जिन्होंने जाना है, उन्होंने अकेले ही गीत गाया है। अकेले ही गा लेना काफी है। फिर प्रीतिकर लगे आप भी अकेले गा लेना। सुगंध पहुंच जानी चाहिये, खबर पहुंच जानी चाहिये। कोई सत्य, किसी भी व्यक्ति को दिखाई पड़ गया हो और कोई आनंद किसी को भी मिल गया हो तो, वह संपत्ति उसके साथ नष्ट नहीं हो जानी चाहिये, इतना ही ध्यान रहे।

***

(उपर्युक्त संदर्भ में सुश्री जयवंती जी ने अपनी मनोभाव दशा—विभिन्न व्यक्तियों के कटाक्ष पर स्पष्ट की है, जो मननीय है।)

हमेशा हमारी नासमझी ही हमारा दुर्भाग्य होती है। बेचारे कई नासमझ उसी कारण से मुझ पर कई अनुमान लगा रहे हैं। और कह रहे हैं कि तुझ जैसी नारियों को रजनीश जी ने गांव-गांव में खड़ी कर दी हैं। मैं सुनकर चुप रह जाती हूं। और आश्चर्य से भर जाती हूं कि, क्या किसी के खड़ा करने से कोई खड़ा रह सकता है।

मैं कोई मुर्दा थोड़े ही हूं कि खड़ा करने से खड़ी हो जाऊं ? मैं तो सभर चेतन हूं, और इसलिये तो मैं स्वतंत्र हूं। न किसी के कहने से कुछ कर रही हूं, न किसी के कहने पर रुकने का सवाल है। जो कुछ कर रही हूं अपने आनंद को बांटने के लिये, अपने प्रेम की सुगंध फैलाने के लिये।

अपनी अपनी मौज है। कुछ करना भी मौज है, और न करना भी मौज है। जब जी चाहे सो कर लेती हूं।

आचार्य श्री के इस प्रश्नोत्तर से सफाई हो जायगी कि, आखिर सच क्या है। मुझे विशेष कहने की जरूरत नहीं है।

जयवन्ती, जूनागढ़

ध्यान का एक विशेष प्रयोग

[दिनांक २५ नवम्बर १९६९ को प्रातः ८ बजे बिरला क्रीडा केंद्र, चौपाटी, बम्बई में हुआ आचार्य श्री का प्रवचन व प्रयोग]

(संकलन : क्रियानन्द, बम्बई)

मेरे प्रिय आत्मन्! ध्यान का अर्थ है, समर्पण। 'टोटल लेट गो'। ध्यान का अर्थ है अपने को पूरी तरह छोड़ देना और जैसे ही कोई व्यक्ति अपने को पूरी तरह छोड़ देता है वैसे ही वह परमात्मा के हाथों में गिर जाता है। जब तक हम अपने को पकड़े हुए हैं तब तक परम शक्ति से हमारा मिलन नहीं हो सकता। हमें अपने को छोड़ना ही पड़ेगा, हमें अपने को खो ही देना होगा। हमें मिटना ही होगा तभी हम उसके साथ एक हो सकते हैं, जो सच में है। जैसे कोई लहर अपने को जोर से पकड़ ले तो फिर सागर नहीं हो सकती है, और लहर अपने को छोड़ दे और बिखर जाय, खो जाय तो वह सागर है ही।

ध्यान कोई क्रिया नहीं है जो आपको करनी है। ध्यान है सब क्रियाओं का छोड़ देना, ध्यान कोई अभ्यास नहीं है जो आप कर सकते हैं, ध्यान है सब अभ्यास का छोड़ देना। ध्यान है बस रह जाना, जैसे हम हैं, जो हम हैं, और कुछ भी न करना। इस ध्यान की स्थिति को समझने के लिये पहले दो तीन छोटे प्रयोग हम करेंगे ताकि आपको भीतर से ख्याल में आ सके कि ध्यान क्या है, फिर उसके बाद हम ध्यान के लिये बैठेंगे।

ध्यान शब्द को समझाना कठिन है। कोई क्रिया होती, कोई अभ्यास होता तो शब्द से बताया जा सकता था, लेकिन ध्यान का थोड़ा सा अनुभव ख्याल मे ले आना आसान है। तो हम तीन छोटे से प्रयोग करेंगे ताकि आपको भीतर से ख्याल आ सके कि ध्यान का भाव क्या है, फिर उसके बाद हम ध्यान के लिये बैठेंगे।

पहला प्रयोग है वह समझ लें, फिर ५ मिनट हम उस प्रयोग को करेंगे, फिर दूसरा, फिर तीसरा और फिर चौथा प्रयोग हम ध्यान का करेंगे। पहला प्रयोग है, उसे समझना ही है भीतर प्रयोग करके। तो मैं इधर कहूंगा, आप उधर प्रयोग करेंगे, एक तो थोड़े थोड़े फासले पर बैठें, कोई किसी को छूता हुआ न हो, किसी को भी कोई छू न रहा हो, थोड़े आगे आ जायें या थोड़े पीछे हट जायें। थोड़े घास पर हट जायें, लेकिन कोई किसी को स्पर्श न करता हो, फिर आंख आहिस्ता से बंद कर लें, जैसे पलक गिरा दी है, आंखें बंद हो गई हैं, आंख पर भी जोर नहीं होना चाहिये और अपने को बिल्कुल ढीला छोड़ दें, आंख बंद कर लें और शरीर ढीला छोड़ दें, किसी तरह का शरीर पर कोई तनाव, स्ट्रेन न रह जाय।

अब भीतर मैं सिर्फ एक कल्पना करने को कहता हूं, ताकि ख्याल आ सके कि ध्यान का क्या मतलब है, पहाड़ों के बीच में एक बड़ी नदी बही जा रही है, जोर की लहरें है, जोर का बहाव है, पहाड़ी नदी है, भीतर देखें कि दो पहाड़ों के बीच में एक बड़ी नदी तेजी से बही जाती है, जोर का बहाव है, जोर की आवाज है, लहरें हैं, तेज गति है और नदी बही जा रही है। देखें,

उसे स्पष्ट देखें, नदी तेजी से बही जा रही है, वह साफ दिखाई पड़ने लगी है इस नदी में आपको उतर जाना है लेकिन तैरना नहीं है। 'जस्ट फ्लोटिंग', इस नदी में आप उतर जायें और बहना शुरू कर दें, हाथ पैर न चलायें, सिर्फ बहे जाये, बहे जायें, बहे जायें। हाथ पैर चलायें ही मत, तैरना नहीं है, सिर्फ बह जाना है।

नदी में हमने अपने को छोड़ दिया है और नदी भागी चली जा रही है और हम उसमें बहे चले जाते हैं, बहे जा रहे हैं, बहे जा रहे हैं, बहे जा रहे हैं, कहीं पहुंचना नहीं हैं, किसी किनारे पर नहीं जाना है, कोई मंजिल नहीं है, इसलिये तैरने का कोई सवाल नहीं है। बस, सिर्फ बहना है। छोड़ दें और बहें। नदी में बहने की जो अनुभूति होगी वह फिर ध्यान को समझने में सहयोगी होगी, एक पांच मिनट के लिये अपने को उस नदी में छोड़ दें और बहते जायें, नदी का कोई अंत ही नहीं है वह बही ही चली जा रही है, आप भी उसमें बहते रहें, कुछ करना नहीं है, हाथ पैर भी नहीं चलाना है, सिर्फ बहते जाना है, बहते जाना है, देखें नदी बह रही है, आप भी उसके साथ बहने लगे हैं, जरा भी तैरना नहीं है, पांच मिनट के लिये मैं चुप हो जाता हूं, आप बहने का, फ्लोटिंग का अनुभव करें—

बहे जा रहे हैं, बहे जा रहे हैं, नदी में छोड़ दिया है, जरा भी तैरना नही है। हाथ पैर भी नहीं हिलाना है, बहे जा रहे हैं जैसे एक सूखा पत्ता नदी में बहता चला जाता हो। ऐसे ही छोड़ दें, देखें, बहते चले जायें बहते चले जायें और बहने के साथ ही एक अनुभव होना शुरू हो जायेगा, समर्पण का, 'सेरेंडर' का। नदी के साथ छोड़ दें अपने को, 'लेट गो' का एक अनुभव होना शुरू हो जायेगा, बहें, बहते चले जायें। नदी तेजी से बहती जा रही है। लहरें तेजी से भागी जा रही है, आप भी नदी में छूट गये हैं और बहे जा रहे हैं, कुछ करना नहीं है, बहते चले जाना है—

बिल्कुल छोड़ दें और बह जायें, नदी और तेजी से बही जा रही है, बही जा रही है, इसको ठीक से अनुभव कर लें। बहने की इस प्रतीति को, बहने के इस अनुभव को ठीक से समझ लें, क्या है, फिर ध्यान में वह सहयोगी होगा। ठीक से समझ लें कि यह बह जाने का अनुभव क्या है, जब हाथ पैर भी नहीं चल रहे हैं और नदी हमें लिये जा रही है, लिये जा रही है, सब कुछ नदी कर रही है, हम कुछ भी नहीं कर रहे हैं। इसे ठीक से देख लें ताकि यह ख्याल में रह जाय। सब कुछ नदी कर रही है, हम कुछ भी नहीं कर रहे हैं। हम सिर्फ बह रहे हैं, एक सूखे पत्ते की तरह। अब धीरे धीरे आंख खोल लें और दूसरा प्रयोग पाँच मिनट के लिये मैं कहता हूं वह समझ लें और दूसरा प्रयोग करें। धीरे धीरे आंख खोल लें।

ध्यान है समर्पण। ध्यान है अपने को खो देना। ध्यान है मिट जाना। ध्यान है सब भांति विसर्जित हो जाना। हमारा गिरना जरूरी है, हमारा मिटना जरूरी है। हमारा होना बाधा है। जैसे एक वृक्ष को कोई काट दे और वृक्ष गिर जाये। जैसे एक बीज जमीन पर पड़ा हो और टूटे और मिट जाय। ठीक ऐसे ही हमें भी भीतर से बिखर जाना और मिट जाना है। दूसरा प्रयोग इस मिटने की दिशा में समझें। आँख बन्द कर लें और अपने को ढीला छोड़ दें।

पहली बात हमने समझी बहने की, दूसरी बात समझें मिटने की। बिल्कुल मिट जाने की। आंख बन्द करें। बहुत आहिस्ता से आंख बन्द कर लें और शरीर ढीला छोड़ दें। आंख बन्द कर ली है। शरीर ढीला छोड़ दिया है। देखें, सामने एक चिता जल रही है। लकड़ियां हैं, जोर से आग की लपटें पकड़ गयी हैं। चिता जोर से जल रही है। चिता को जलता हुआ देखें। लकड़ियों में आग पकड़ गयी है। चिता का जलना शुरू हो गया है। ठीक से देखें। चिता को आग पकड़ गयी है। लपटें जोर से ऊपर भाग रही हैं, आकाश की तरफ चिता जल रही है। दूसरी बात ख्याल से देखें कि इस चिता को आप देख ही नही रहे हैं, इस चिता पर आप चढ़े हुए है। आप ही इस चिता पर चढ़ा दिये गये हैं।

सब मित्र, प्रियजन चारों ओर खड़े हुए हैं। आग लगा दी गयी है। आप चिता पर चढ़ा दिये गये हैं। लकड़ी ही नहीं, आप भी जल रहे हैं। लकड़ियों में लपटें लगी हैं और आप भी जले जा रहे हैं। थोड़ी देर में सब राख हो जायेगा, लकड़ी भी और आप भी। अपने को ही चिता पर चढ़ा हुआ अनुभव करें। देखें, सामने ही अपना ही शरीर उस चिता पर चढ़ा है और आग में जला जा रहा है। एक पांच मिनट इस अनुभव को करें ताकि मिटने का बोध ख्याल में आ सके। एक दिन चिता जलेगी ही। एक दिन आप उस पर चढ़ेंगे ही। सभी को उस पर चढ़ जाना है। तो आज अपने मन के सामने ठीक से देख लें। चिता की जलती हुई लपटें, आकाश की तरफ भागती हुई अग्नि-शिखायें और आप चढ़े हैं। लकड़ियां ही नहीं जल रही हैं आप भी जले जा रहे हैं। देखें, जोर से लपटें बढ़ती चली जाती हैं, आपका शरीर भी जला जा रहा है। थोड़ी देर में आग भी बुझ जायेगी, राख रह जायेगी। लोग बिदा हो जायेंगे। मरघट खाली, सुनसान हो जायेगा। अब देखें, चिता पर चढ़े हुए हैं आप, मैं चुप हो जाता हूं। लपटें जलती रहेंगी। आपको कुछ करना नहीं है। लपटें जलेंगी, जला देंगी। सब राख हो जायेगा। थोड़ी देर भीड़ खड़ी रहेगी मित्रों की, प्रियजनों की आसपास। फिर वे भी बिदा हो जायेंगे। फिर राख ही पड़ी रह जायेगी। मरघट सुनसान रह जायेगा। देखें, शुरू करें। लपटें साफ देखें। ऊपर आप ही चढ़े हुए हैं और जल रहे हैं, कुछ करना नहीं है। जलने में क्या करना है? जल जाना है। आग काम कर देगा। लपटें काम कर देंगी। आपको तो कुछ नहीं करना है। जल जाना है। मिट जाना है। ५ मिनट के लिये आग पर, चिता पर अपने को चढ़ा हुआ देखते रहें। फिर धीरे-धीरे लपटें बुझ जायेंगी। सब शांत हो जायेगा।

इस मिट जाने के अनुभव को ठीक से स्मरण रख लेना। वे ध्यान में काम पड़ सकेंगे। ..... लपटें बढ़ती जा रही हैं। शरीर जलता जा रहा है। आप भी मिटते चले जा रहे हैं। सब धुआं हो जायेगा। सब राख हो जायेगी। मरघट शांत हो जायेगा। जरा भी अपने को बचाने की कोशिश मत करना। छोड़ देना लपटों में, ताकि सब जल जाय, सब मिट जाय, सब राख हो जाय। देखें, लपटें बढ़ती चली जाती हैं, धुआं बढ़ता चला जाता है, सब जला जा रहा है। आप भी जले जा रहे हैं, मिटे जा रहे हैं। इसे बहुत साफ देख लें। ताकि यह ध्यान में सहयोगी हो जाय। क्योंकि ध्यान भी एक तरह की मृत्यु ही है। देखें, साफ देखें। सब जल रहा है। सब मिट रहा है। सब समाप्त हो रहा है। और आपको कुछ भी नहीं करना है। बस मिट रहा है। सब समाप्त हो रहा है। और आपको कुछ भी नहीं करना है। बस जल जाना है। मिट जाना है। आग सब काम कर लेगी। आपको क्या करना है? आग सब काम कर रही है जलाये दे रही है। लपटें भागी चली जा रही हैं। सब मिटता चला जा रहा है। नदी में तो तैर भी सकते थे, यहां तो तैर भी नहीं सकते हैं। यहां तो तैरने का कोई उपाय ही नहीं है। सब मिटा जा रहा है। लपटें सब समाप्त किये दे रही हैं। देखें धुआं रह जायेगा, राख रह जायेगी, मरघट सुनसान हो जायेगा। लोग बिदा हो जायेंगे। ..... हवायें चल रही हैं, लपटें और जोर से बढ़ी जा रही हैं। हवायें लपटों को बढ़ाये दे रही हैं। सब जला जा रहा है। सब जला जा रहा है। थोड़ी देर में सब राख हो जायेगा। हवाओं में लपटें और जोर पकड़ रही हैं। देखें, सब जल गया है। लपटें बुझती जा रही हैं। राख पड़ी रह गयी है। लोग बिदा होने लगे हैं। मरघट पर सन्नाटा छा गया है। हवायें फिर भी चलती रहेंगीं। राख उड़ती रहेगी। मरघट पर कोई न होगा। लोग बिदा होने लगे। सब सन्नाटा हो गया। आप मिट गये हैं। राख ही पड़ी रह गयी है। इसे ठीक से देख लें। यह ध्यान में देखना अत्यन्त जरूरी है। ठीक से देख लें। सब पड़ा हुआ रह गया है। राख ही पड़ी रह गयी है। बुझे हुए अंगार रह गये हैं। लोग जा चुके हैं और मरघट पर कोई नहीं हैं। आग भी बुझ गयी है और आप भी मिट गये हैं। .....

अब धीरे धीरे आंख खोल लें और तीसरे प्रयोग को समझें और उसे करें। धीरे धीरे आंख खोल लें और बैठ जायें।

पहली बात है यह समझ लेना कि बहने का अर्थ क्या है। दूसरी बात है यह समझ लेना कि मिटने का क्या अर्थ है। और अब तीसरी बात समझनी है। तीसरी बात का नाम है तथाता, 'सचनेस'। ये तीसरी बात उन दोनों से ज्यादा आगे ले जाने वाली है। और ये तीन सीढ़ियां ठीक से समझ लेनी हैं।

तथाता या सचनेस का मतलब है, चीजें ऐसी हैं। रास्ते पर आवाज आ रही है, क्योंकि रास्ते पर आवाज आयेगी ही। पक्षी शोरगुल कर रहे हैं, क्योंकि पक्षी शोरगुल करेंगे ही। समुद्र की लहरें किनारे से टकरा रही हैं, आवाज आ रही है, क्योंकि समुद्र की लहरें और क्या कर सकती हैं ? जो हो रहा है, वैसा हो रहा है। वैसा है। वैसा ही हो सकता है। अन्यथा कोई उपाय ही नहीं है। तथाता का मतलब है कि विरोध का कोई कारण नहीं है। कुछ उल्टा हो जाय इसकी अपेक्षा की जरूरत नहीं है। जैसा है, वैसा है। घास हरा है। आकाश नीला है। समुद्र की लहरें शोर कर रही हैं पक्षी आवाज मचा रहे हैं। कौवे चिल्ला रहे हैं। सड़क पर लोग जा रहे हैं कारों की आवाज हो रही है। हार्न बज रहे हैं। ऐसा है। इस होने की स्थिति में हमारा कोई विरोध नहीं है। इस होने की स्थिति से हम राजी हो गये हैं। हम पूरी तरह से राजी हैं कि ऐसा है। न हम चाहते हैं कि कौवे आवाज बंद कर दें। न हम चाहते हैं कि सड़क पर लोग हार्न न बजायें, न हम चाहते हैं कि समुद्र की लहरें शोरगुल न करें। ऐसा है। जगत ऐसा है।

जगत के सम्बन्ध में भी यह बात ध्यान रखनी है कि ऐसा है और हम इसके लिये पूरी तरह से राजी हैं। हमारा कोई विरोध नहीं है। और अपने सम्बंध में भी ध्यान रखना है भीतर कि ऐसा है। पैर में चींटी काट रही है तो दर्द हो रहा है। ऐसा है। चींटी काट रही है और पैर में दर्द हो रहा है। इसमें कुछ विरोध नहीं है। ऐसा हो रहा है। ऊपर से धूप आ रही है और पसीने की बूंदें बह रही हैं। ठीक है, धूप आयेगी तो पसीना बहेगा ही। इसमें कुछ विरोध नहीं है। इसमें कुछ करना नहीं है। इसे स्वीकार कर लेना है। ऐसा है। और जैसे ही इसे हम स्वीकार करते हैं, हमारा विरोध चला जाता है। 'रेजिस्टेंस' चला जाता है। वैसे ही भीतर कुछ कुछ शांत होना शुरू हो जाता है, जो सदा से अशांत रहा है। वह अशांत इसीलिये रहा है कि उसने चाहा है कि ऐसा हो। उसने कभी ऐसा नहीं माना है कि ऐसा है। सूरज बढ़ रहा है, किरणें आ रही हैं, तो पसीना बहेगा, धूप लगेगी। ऐसा उसने स्वीकार नहीं किया है कभी। सूरज नहीं होना चाहिये, किरणें नहीं होनी चाहिये, पसीना नहीं बहना चाहिये, ऐसा मन ने चाहा है। जिसे ध्यान में जाना है उसे ऐसी आकांक्षा बड़ी बाधा बन जायेगी। कैसा होना चाहिये, नहीं। जैसा है, है। शांत होने का एक ही अर्थ है कि जैसा है, है। और हम उसके लिये पूरी तरह राजी हो गये हैं।

यह तीसरा बिंदु है, तथाता। तो पांच मिनट चीजें ऐसी हैं, हमें कुछ करना नहीं है। करने का कोई उपाय भी नहीं है। हम नहीं थे तब भी चीजें ऐसी थी समुद्र तब भी इसी तरह शोर करता रहा, कौवे बोलते रहे, पक्षी चिल्लाते रहे, रास्ता चलता था। हम नहीं होंगे तब भी चीजें ऐसी ही होंगी। तो जब हम हैं तब भी चीजें ऐसी रहें तो अड़चन क्या है, कठिनाई क्या है। हमारे होने न होने का इस सारे से क्या संबंध। आंख बंद करें आहिस्ता से आंख ढीली छोड़ दें, शरीर को आराम में छोड़ दें। शरीर का ढीला, रिलेक्स छोड़ दें आंख बंद कर लें, शरीर ढीला छोड़ दें। और अब तीसरे प्रयोग में उतरें।

तथाता, चीजें ऐसी हैं। हमें कुछ करना नहीं है। चीजें ऐसी हैं ही। जगत ऐसा है ही। फिर कौन सी तकलीफ है ? चीजें ऐसी हैं। बच्चा बच्चा है, बूढ़ा बूढ़ा है। स्वस्थ स्वस्थ है, बीमार बीमार है। पक्षी

आवाज कर रहे हैं, घास हरा है, आकाश नीला है, कहीं धूप पड़ रही है, कहीं छाया है। ऐसा है । अब ख्याल करें, चीजें ऐसी हैं । हमारा कोई विरोध नहीं है । अविरोध, नो-रेजिस्टेंस। हमारा कोई विरोध नहीं है। इन चीजों के बीच में हम भी हैं। एक पाँच मिनट ऐसा ख्याल करें। कोई विरोध नहीं है, कोई विरोध नहीं है, कोई विरोध नहीं है । जो है, जैसा है, हम उससे राजी हैं। न हम कुछ बदलना चाहते हैं । न कुछ हम मिटाना चाहते हैं, न कुछ हम बनाना चाहते। जैसा है, वैसा है । हम उससे राजी हैं । एक पाँच मिनट के लिये इस राजी होने की स्थिति में अपने को छोड़ दें। देखें, ये कौवे की आवाज और तरह की सुनाई पड़ेगी। जब हम राजी हो जायेंगे तो ये कौवे की आवाज और तरह की सुनाई पड़ेगी। इससे कोई विरोध नहीं है तो हमारे और इसके बीच की दीवार टूट जायेगी। सुनें——सड़क की आवाज और तरह की सुनाई पड़ेगी। अगर हमारा कोई विरोध नहीं है तो सड़क की आवाज और तरह की सुनाई पड़ेगी——समुद्र का शोर अब दुश्मन की तरह नहीं मालूम पड़ता, एक डिस्टर्बेन्स नहीं मालूम पड़ता। सुनें, हमारा कोई विरोध नहीं है। जो है, जैसा है, है——५ मिनट के लिये जो है उससे राजी होकर डूब जायें——देखें, अब धूप वैसी मालूम नहीं पड़ती। जो है, है। कुछ भी वैसा मालूम नहीं पड़ता। हम शत्रु की तरह नहीं हैं, एक मित्र की तरह हैं। जो है, उससे राजी हैं——इस तीसरे सूत्र को भी ठीक से ध्यान में रख लेना। तथाता, सचनेस, चीजें ऐसी हैं। इसे ठीक से समझ लेना कि चीजें ऐसी हैं——कोई विरोध नहीं, कोई शत्रुता नहीं, कुछ अन्यथा हो इसकी आकांक्षा नहीं। चीजें ऐसी हैं, धूप गरम है। छाया सर्द है, समुद्र अपने काम में लगा है, रास्ते पर चलने वाले लोग अपने काम में लगे हैं। जरा भी विरोध न रखें। बस ऐसा हो रहा है, हो रहा है, हो रहा है। और हम जान रहे हैं। कुछ बदलना नहीं है। कुछ मिटाना नहीं है। कुछ परिवर्तन नहीं करना है। इस तीसरे सूत्र को ठीक से समझ लेना क्योंकि ध्यान की गहराई में जाने के लिये यह अत्यन्त जरूरी है। चीजें ऐसी हैं, अब धीरे धीरे आंख खोल लें।

अब ध्यान के सम्बन्ध में २-३ बातें समझें और फिर हम ध्यान के लिये बैठेंगे। मैंने ये ३ सूत्र आपको समझाने की अलग अलग कोशिश की, क्योंकि ध्यान में ये तीनों जरूरी हैं।

एक तो बहना, तैरना नहीं। हम जीवन भर तैरते हैं, बहते नहीं। कुछ चीजें हैं जो तैरने से कभी भी नहीं मिल सकतीं, सिर्फ बहने से ही मिल सकती हैं। अस्तित्व, सत्य या परमात्मा कभी तैरने से नहीं मिल सकता, सिर्फ बहने से मिल सकता है। जो भी बहने को राजी है, वह सागर तक पहुंच जायेगा। नदी खुद ही ले जाती है। जो बहने को राजी है, जीवन उसे खुद ही ले जाता है उसे कहीं जाना नहीं पड़ता। जो तैरा वह भटक जायेगा। तैरने वाला ज्यादा से ज्यादा एक किनारे से दूसरे किनारे पहुंच जायेगा लेकिन सागर तक नहीं। सागर तक जिसको जाना हो उसे तैरने की जरूरत ही नहीं, उसे नदी से लड़ने की जरूरत ही नहीं वह तो बह जाय। नदी तो खुद ही सागर की तरफ जा रही है। जीवन स्वयं ही परमात्मा की तरफ जा रहा है। अगर हम न रोकें तो जीवन अपने आप ही परमात्मा तक पहुंचा देता है। हम रोक लेते हैं, जगह जगह और हम नहीं पहुंच पाते। इसलिये बहने का अनुभव पहला।

दूसरा मिटने का अनुभव, हम जीवन भर अपने को बचाने को कोशिश में लगे हैं। किसी तरह अपने को बचा लें। इससे ज्यादा भ्रामक और कोई बात नहीं हो सकती। हम बचने वाले नहीं है। और जो बचने वाला है, उसे बचाने की कोई जरूरत नहीं है। वह बचा ही हुआ है। जिसे हम बचाने की कोशिश में लगे हुए हैं, वह मिटने ही वाला है। इसीलिये हम बचाने की कोशिश में लगे हैं। और हमारी कोई कोशिश काम में न आयेगी। वह मिट ही जायेगा। और जो बचने ही वाला है, वह हमारी कोशिश से न बचेगा, वह बचा ही हुआ है। उसके

मिटने का उपाय ही नहीं हैं। हमारे भीतर जो बचने वाला है, वह सदा बचा ही हुआ है। और जो मिटने वाला है, वह मिटेगा ही। हमारी बचाने की कोशिश में सिर्फ हम परेशान हो जायेंगे और कुछ भी नहीं हो सकता।

इसलिये दूसरा सूत्र मैंने आपसे कहा—मर जाने का, मिट जाने का, मिट जाने की तैयारी का और ध्यान रहे, जो मरने को तैयार है, वह पूरे जीवन का अधिकारी हो जाता है। क्योंकि जो मरने से भयभीत न रहा उसके सब द्वार खुल जाते हैं। जीवन सब द्वारों से प्रवेश कर जाता है। भय के कारण, मृत्यु न आ जाये, मिट न जायें इस कारण हमने सब दरवाजे बन्द कर लिये हैं। और भीतर छिप कर बैठ गये हैं। जीवन भी नहीं आ पाता, क्योंकि दरवाजे वही हैं। जिनसे मृत्यु आती है उन्हीं से जीवन भी आता है। उन्हें हमने बन्द कर रखा है। हमने दरवाजे बन्द कर दिये हैं, कि शत्रु न आ जाये, लेकिन मित्र भी उन्हीं दरवाजों से आता है। वे दरवाजे बन्द हो गये हैं। मित्रों का आना भी बन्द हो गया है। हम भीतर हैं, अपने को बचाने में लगे हैं। सब दरवाजे छोड़ दें। मिटने को राजी जो हो जाता है, वह सब दरवाजे छोड़ देता है खुले। जो ओपनिंग है, 'ओपन्नेस' है, वह सिर्फ उसी को मिलती है जो मिटने को राजी है। उसको 'क्लोज' करने का कोई सवाल ही न रहा। उसे बन्द करने का कोई सवाल न रहा। वह मिटने तक को राजी है। अब और क्या डर है? वह खुद ही मिटने को राजी है। अब कौन उसे मिटा सकता है? इसलिये दूसरा सूत्र मैंने कहा मिटने को राजी हो जायें। क्योंकि ध्यान की गहरी प्रक्रिया मरने की प्रक्रिया है और जो मरना सीख जाता है वह जाने की कला भी सीख जाता है।

और तीसरी चीज मैंने कही कि चीजें ऐसी हैं, आप लड़ें मत। जीवन को शत्रुता से न लें। एक दुश्मन की तरह न खड़े हो जायें। हम सब दुश्मन की तरह खड़े हो गये हैं। हर चीज से लड़ रहे हैं। हर चीज ऐसी होनी चाहिये। जैसी है, वैसी हमें स्वीकार नहीं हैं। तब हम पूरे जीवन के साथ दुश्मनी में खड़े हो गये हैं। उससे जीवन कुछ बदल नहीं जाता है। उससे हम सिर्फ टूटते हैं और नष्ट हो जाते हैं।

ध्यान की गहराई तो तभी उपलब्ध होगी जब जीवन जैसा है हम उसे परिपूर्णता से स्वीकार कर रहे हैं। ऐसा है, हमें कांटा भी स्वीकार है। अगर वह गड़ता है तो हम कहते हैं कि कांटा है, गड़ेगा ही। हमें फूल भी स्वीकार है, अगर वह नहीं गड़ता तो हम कहते हैं कि फूल है, गड़ेगा कैसे, कांटा है तो गड़ेगा फूल है तो नहीं गड़ेगा। लेकिन हमें दोनों स्वीकार है। कांटे का कांटापन स्वीकार है, फूल का फूल होना स्वीकार है। न हमें कांटे से विरोध है, न हमें फूल की आकांक्षा है। जैसा है, वह हमें स्वीकार है। ऐसी स्वीकृति से ही कोई शांत हो सकता है। शांति अंततः परिपूर्ण स्वीकार का फल है। अगर आप अशांत हैं तो अपनी अशांति को स्वीकार कर लें, कि मैं अशांत हूं और आप पायेंगे कि ये स्वीकृति आपको शांति में ले जाती है।

एक फकीर के पास एक आदमी गया और उसने कहा कि आप तो बड़े शांत हैं और मैं बड़ा अशांत हूं। उस फकीर ने कहा, बहुत अच्छा है, बहुत अच्छा है। मैं शांत हूं, तुम अशांत हो। बात खत्म हो गयी। अब और क्या करना है? उस आदमी ने कहा, नहीं बात खतम नहीं हो गयी है, मुझे भी शांत होना है। 'यह बहुत मुश्किल है', उस फकीर ने कहा, 'क्योंकि जो अशांत है वह शांत कैसे हो सकता है? तुम अशांत होने में राजी हो जाओ। तुम कहो कि मैं अशांत हूं बात ठीक है अशांत हूं इसका विरोध छोड़ दो। उस आदमी ने कहा लेकिन मुझे शांत होना है। उस फकीर ने कहा, 'अब तुम जाओ, क्योंकि मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि तुम्हें शांत होना है, लेकिन तुम तो अशांत होने की व्यवस्था कर रहे हो, क्योंकि जिसे कुछ भी होना है, वह अशांत हो जायेगा। तुम अशांत हो तो राजी हो जाओ कि अशांत हो, फिर देखो कि शांति कैसे नहीं आती है। वह चली आयेगी।'

अगर कोई आदमी अशांत होने में भी राजी हो जाये तो भी क्या शांति उसके द्वार से क्या बहुत दिन तक दूर रह सकती है ? कैसे रहेगी दूर ? जो अशांत होने में भी राजी हो गया है उससे शाँति कैसे दूर रह सकती है ? जो अशान्ति तक के लिये राजी हो गया है, उसके लिये शान्ति भागी चली आयेगी। क्योंकि कोई उपाय न रहा रुकने का अब।

इसलिये जो है उसकी परिपूर्ण स्वीकृति से क्रांति आती है जो सहज है। और सब सहज ही आता है। ये तीन सूत्र मैंने कहे। इन तीनों को ध्यान में रखना क्योंकि अभी जब हम ध्यान में जायेंगे तो इन तीनों का ही प्रयोग करके गहरे उतर जाना है।

अब हम ध्यान के लिये बैठेंगे तो उसमें २-३ बातें समझ लेनी है। हो सकता है कि जब कोई अपने को ध्यान में पूरी तरह छोड़े तो गिर जाय। इसलिये जितने फासले पर हट सकें, हट जायें। थोड़ी भी जगह न छोड़ें। कोई गिर सकता है। वह आपके ऊपर गिर जाय तो आपको परेशानी होगी, उसको भी परेशानी होगी। थोड़ी दूर हट जायें। और या फिर किसी को पूरे वक्त ख्याल रखना पड़े कि कहीं मैं गिर न जाऊँ क्योंकि अगर किसी ने सच में अपने को पूरी तरह नदी में छोड़ दिया है तो वह यह भी कहां ख्याल रख पायेगा कि शरीर आगे गिर गया कि पीछे गिर गया, गिर गया कि नहीं गिर गया। अगर इतना भी ख्याल रखना पड़ा तो वह फिर बह नहीं पायेगा। अब जिसकी चिता पर लाश चढ़ गयी है। उसे अब कहां ख्याल रह जायेगा कि कौन पड़ोस में बैठा हुआ है। अगर ख्याल रहा तो चिता पर लाश चढ़ नहीं पायी। लेकिन अगर कोई आपके ऊपर भी गिर गया है या आप किसी के ऊपर गिर गये हैं तो इसे भी स्वीकार कर लेना है। ठीक है कि कोई गिर गया है इसमें उतनी परेशान होने की कोई जरूरत नहीं है। गिरा रहने देना है। जो गिर गया है, उसे भी गिरा रहना है और जिसके ऊपर गिर गया है वह भी गिरा रह जाने दे। इसकी भी क्या बात है, चीजें ऐसी हैं कि कोई गिर गया है। इसमें कुछ बहुत परेशान होने की जरूरत नहीं है। थोड़े फासले पर हट जायें और फिर हम ध्यान के लिये बैठें।

———इसलिये मैंने कहा ध्यान यानी समर्पण पूरी तरह छोड़ देना है। जो होगा, होगा। हमें न यह सोचना है कि क्या होगा न हमें दिशा देनी है कि ये हो। न हमें चेष्टा करनी है। हमें तो छोड़ देना है. छोड़ देना है। जो हो. हो।

अब आंख बंद कर लें। बहुत धीमे से आंख बंद कर लें। शरीर को ढीला छोड़ दें। जैसे शरीर में कोई प्राण ही न हो ऐसा ढीला छोड़ दें। और ३ मिनट तक मैं सुझाव दूंगा। मेरे साथ अनुभव करें। ३ मिनट तक मैं सुझाव दूंगा, सजेशन दूंगा कि शरीर शिथिल हो रहा है हो रहा है. शिथिल हो रहा है, रिलेक्स हो रहा है, रिलेक्स हो रहा है तो भीतर आपको अनुभव करते जाना है कि शरीर शिथिल हुआ, शिथिल हुआ, शिथिल हुआ, शिथिल हुआ। अनुभव ही नहीं करना है अनुभव के साथ शरीर को शिथिल छोड़ते जाना है। एक तीन मिनट में शरीर बिल्कुल मिट्टी की तरह हो जायेगा बिखर जायेगा, गिर जायेगा, झुक जायेगा तो आपको कोई बाधा नहीं देनी है। जो हो, हो जाय। अब मैं शुरू करता हूं। ..... अनुभव करें।

शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है, छोड़ें। छोड़ते जायें और करते जायें। शरीर शिथिल हो रहा है। छोड़ते भी जायें साथ-साथ और अनुभव करते जायें कि शरीर शिथिल हो रहा है। बिल्कुल छोड़ दें। आप नहीं हैं मालिक। शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है, छोड़ दें। शरीर शिथिल हो रहा है————अनुभव करें, शरीर का रग-रग, रेशा-रेशा शिथिल होता जा रहा है। शरीर शिथिल हो रहा है————बिल्कुल छोड़ दें, जैसे शरीर है ही नहीं। शरीर शिथिल हो रहा है शरीर शिथिल हो रहा है। शरीर का कण-कण शिथिल होता जा रहा है। रग-रग शिथिल होती जा

रही है। छोड़ दें। शरीर शिथिल हो रहा है। ———छोड़ दें, बिल्कुल और दूसरे पर ध्यान न दें। अपने को ढीला छोड़ दें। बिल्कुल छोड़ दें। दूसरे पर ध्यान न दें। दूसरा कोई नहीं है। आप अकेले ही हैं। शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है——— शरीर बिल्कुल शिथिल हो रहा है, जैसे हो ही नहीं। अपनी सारी पकड़ छोड़ दें। आप पकड़े हुए न रह जायें। फिर शरीर का जो हो। गिरता हो गिरे, न गिरता हो न गिरे। आगे झुके, पीछे झुके जो हो। आप पकड़े हुए न रह जायें, इतना ध्यान रखें। आप शरीर को नहीं पकड़े हैं। आपने छोड़ दिया है। अब जो भी होगा, होगा। आप रोकें नहीं, जो हो, हो। शरीर शिथिल हो रहा है———छोड़ दें, जैसे नदी में छोड़ दिया था। ऐसे ही छोड़ दें और बह जायें।———जैसे नदी में छोड़ दिया था और बह गये थे, ऐसे ही बह जायें। छोड़ दें, छोड़ दें, छोड़ दें। जीवन की सरिता ले जाये जहां, ले जाये। छोड़ दें, बिल्कुल छोड़ दें। शरीर शिथिल हो गया है। गिरता हो गिर जाय, जरा भी रोकें नहीं। छोड़ दें, नदी ले जायेगी, बह जायेंगे छोड़ दें। जीवन की सरिता में छोड़ दें, सूखे पत्ते की भांति और बह जायें। बहें———शरीर शिथिल हो गया है, शरीर शिथिल हो गया है———जैसे है ही नहीं। शरीर जैसे है ही नहीं छोड़ दें। ———श्वांस शांत हो रही है अनुभव करें। श्वांस शांत होती जा रही है…… ….रोकनी नहीं है अपनी तरफ से। ढीला छोड़ दें। श्वांस शांत हो रही है, श्वांस शांत होती जा रही है। बिल्कुल श्वांस शांत हो रही है। छोड़ दें। श्वांस को भी छोड़ दें। श्वांस शांत होती जा रही है, श्वांस शांत हो रही है——— जैसे-जैसे श्वांस शांत होती चली जायेगी वैसे-वैसे लगेगा कि हम तो मिट गये, मिटे, मिटे, मिटे। क्योंकि हमारा होना श्वांस से जुड़ा हुआ है। श्वांस शांत होती जा रही है, शांत होती जा रही है———श्वांस बिल्कुल शांत होती चली जा रही है। ऐसा लगेगा कि गयी, गयी, गयी। श्वांस बिल्कुल शांत हो गयी श्वांस शांत हो गयी ———अनुभव करें। जैसे चिता पर चढ़ गये थे और जल गये थे और राख रह गयी थी, सब मिट गया था। ऐसे ही श्वांस विलीन होती जा रही है, विलीन होती जा रही है। धीरे-धीरे सब बिदा हो जायेगा, कुछ भी न रह जायेगा। पीछे राख भी न छूट जायेगी। अनुभव करें, जैसे चिता पर चढ़ गये थे, ऐसे ही श्वांस खोती जा रही है, खोती जा रही है। मरते जा रहे हैं, मरते जा रहे हैं। धीरे-धीरे सब मर जायेगा। पीछे कुछ भी शेष न रह जायेगा, छोड़ दें। श्वांस को भी छोड़ दें।

और तीसरी बात अनुभव करें। पक्षियों की आवाज है, सूरज की किरणें हैं, सड़कों पर गति है, शोर-गुल है। सागर की लहरें हैं। सब सुनाई पड़ रहा है। साक्षी होकर चुपचाप सुनते रह जायें, सुनते रह जायें, सुनते रह जायें। ऐसा है, ऐसा है, ऐसा है। चीजें ऐसी हैं। और कुछ भी न करें। बस जान रहे हैं, सुन रहे हैं, जान रहे हैं, सुन रहे हैं। कुछ भी नहीं करना है। जो है, उसके साथ चुपचाप एक होकर जानते हुए रह जाना है। अब १० मिनट के लिये मैं चुप हो जाता हूं।

शरीर शिथिल हो गया है, श्वांस शांत हो गयी है और आप तथाता में, साक्षी-भाव में बैठे रह गये हैं। धीरे धीरे, धीरे धीरे भीतर कुछ बदलता जायेगा, शांत होता जायेगा, बदलता जायेगा शांत होता जायेगा। फिर भीतर कुछ शून्य हो जायेगा। फिर भीतर कुछ मौन हो जायेगा। आप नहीं रह जायेंगे। कोई और उस शून्य में आ जायेगा। अब मैं चुप हो जाता हूं। आप सुनते रहें, साक्षी-भाव से देखते रहें, जानते रहें, जो भी हो रहा है। कोई विरोध नहीं है। ऐसा है देखें, भीतर देखें, बाहर सुनें और चुपचाप साक्षी बने रह जायें। १० मिनट के लिये सिर्फ साक्षी रह जायें।———

मन शांत और शून्य हो गया है। सब मिट गया है। मन बिल्कुल शून्य हो गया है। मन शून्य हो गया देखते रहें, जानते रहें, मन बिल्कुल शून्य हो गया है ———साक्षी बने रहें, देखते रहें, जानते रहें, अनुभव करते रहें।

नदी बहा के ले गयी है, चिता ने जला दिया है। आप चुपचाप जान रहे हैं, जान रहे हैं। इसी शून्य

में किसी क्षण उसका प्रवेश हो जाता है जिसका नाम आनन्द है। उसका प्रवेश हो जाता है, जिसका नाम परमात्मा है, सब शून्य हो गया है, सब शून्य हो गया है। द्वार खुले हैं, प्रतीक्षा में, सब शून्य हो गया है——

अब धीरे धीरे दो चार गहरी श्वांस लें, धीरे धीरे गहरी श्वांस लें। प्रत्येक श्वांस के साथ बहुत ताजगी, बहुत शांति, बहुत आनन्द मालूम पड़ेगा। फिर धीरे धीरे आँख खोलें। आंख न खुले तो जल्दी न करें, गहरी श्वाँस लें फिर धीरे धीरे आंख खोलें। हो सकता है कि किसी को आंख खोलने में तकलीफ हो तो हाथ आँखों से लगा लें। फिर धीरे धीरे आंख खोलें। धीरे धीरे आंख खोलें। जो लोग गिर गये हैं वे पहले गहरी श्वांस लें फिर धीरे धीरे उठें। फिर आंख खोलें——

जो प्रयोग मैंने ध्यान के लिये कहा है इसे रात सोते समय करें और फिर प्रयोग को करते करते ही सो जायें ताकि कल सुबह जब यहां आयें तो इसकी अन्तर-धारा भीतर बहती रहे। और रोज भी मेरे चले जाने के बाद सोते समय ही इस प्रयोग को करें और चुपचाप सो जायें। बस प्रयोग को करने के बाद फिर कुछ भी न करें। प्रयोग करते करते ही सो जायें ताकि पूरी नींद धीरे धीरे ध्यान में परिवर्तित हो जाय।

★★★

अंतर्स्फुरणा

शिव

मेरी दृष्टि में
इस देश का कल्याण तब तक न होगा
जब तक यह भगवानों से मुक्त न हो
और आज तो
भगवानों से जो मुक्त कर रहा हो
वही सही अर्थों में भगवान है,
क्योंकि यह देश भगवानों में ऐसा ग्रस्त है
कि भगवान के अलावा इसे मुक्त करने का साहस कौन कर सकता है ?
मगर मेरी दृष्टि की किसे और क्यों हो फिकर·····?
क्योंकि न मैं कोई मिनिस्टर हूं,
न गवर्नर, और न ही फॉरेन रिटर्न्ड·····
मैं तो इतना साधारण आदमी हूं
कि मेरी क्या वक्अत ?
भगवान भी बिना फॉरेन रिटर्न्ड हुए यहां बोलेगा
तो उसे नहीं सुना जायगा,
यह इस देश के बावत है एक चिर परिचित ? सत्य,
कौन जाने, क्यों ?

ध्यान के प्रयोग पर कुछ प्रश्नोत्तर

(बिरला क्रीडा केन्द्र, चोपाटी, बम्बई में दिनांक २९-११-६९ को हुआ आचार्य श्री का एक प्रवचन-प्रश्नोत्तर)

(संकलन : क्रियानन्द, बम्बई)

मेरे प्रिय आत्मन्, पिछले ४-५ दिन ध्यान का प्रयोग हम कर रहे थे, ध्यान को समझने की कोशिश भी हम कर रहे थे। उस सम्बन्ध में बहुत से प्रश्न पूछे गये हैं। आज आखिरी दिन उन प्रश्नों पर विचार कर लेना जरूरी है।

● एक मित्र ने पूछा है—बहने का प्रयोग जब हम करते हैं तो क्या हम उसका भी विरोध न करें, जो हमें बुरा मालूम पड़ता है ?

यदि बुरे का विरोध किया तो बह ही न सकेंगे। अगर बुरे को बुरा समझा तो भी बह न सकेंगे। बुरे का विरोध करने की जरूरत नहीं है। बुरे को बुरा समझना ही विरोध शुरू हो जाता है। मन के किसी विचार को बुरा कहना ही विरोध शुरू हो गया। विरोध अलग से करना नहीं पड़ेगा। ये ख्याल कि ये बुरा है, और विरोध शुरू हो गया। न तो बुरे का विरोध करना है और न अच्छे का स्वागत करना है। बुरे का विरोध करेंगे और अच्छे का स्वागत करेंगे तो बह नहीं सकते हैं। जहां चुनाव है, जहां 'च्वायस' है, वहां बहाव नहीं हो सकता है। बहाव तो 'च्वायस-लेस' ही होगा, वो तो चुनाव रहित ही होगा। इसलिये बुरे आदमी भी ध्यान नहीं कर पाते और अच्छे आदमी भी ध्यान नहीं कर पाते।

बुरे आदमी की पकड़ है कि बुरे को पकड़ूं और अच्छे आदमी की पकड़ है कि बुरे को छोड़ूं, अच्छे आदमी की पकड़ है, अच्छे को पकड़ूं। लेकिन पकड़ दोनों की है। और एक सबसे बड़े मजे की बात यह है कि जिसे हम अच्छा कहते हैं और जिसे हम बुरा कहते हैं, ये दोनों अलग अलग चीजें नहीं हैं। एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तो जब कोई आदमी कहता है कि मैं अच्छे को पकड़ूं तो यह इतना ही कर सकता है कि सिक्के के अच्छे पहलू को ऊपर कर ले, बुरा पहलू नीचे सदा मौजूद रहेगा। और जब वह अच्छे को पकड़ेगा तो बुरा भी पकड़ ही जायेगा, क्योंकि वह दूसरी चीज नहीं है, वह अच्छे का ही दूसरा पहलू है।

अगर एक रुपये के मैं एक पहलू को पकड़ना चाहूं और कहूं कि दूसरे को छोड़ दूंगा, एक को पकड़ूंगा तो इतना ही हो सकता है कि एक को मैं ऊपर कर लूं और दूसरे को नीचे छिपा लूं। अच्छा आदमी वह है जिसने अच्छे पहलू को ऊपर कर लिया है और बुरे पहलू को नीचे कर दिया है। बुरा आदमी वह है जिसने बुरे पहलू को ऊपर कर लिया है और अच्छे पहलू को नीचे कर दिया है। बुरे और अच्छे आदमी में बुनियादी फर्क नहीं है। वे एक ही सरह के आदमी हैं। सिक्का उल्टा और सीधा इतना ही फर्क है। एक सिक्का उल्टा पड़ा है, एक सिक्का सीधा पड़ा है, उन दोनों में कोई फर्क है ?

बुरे आदमी के भीतर अच्छा आदमी हमेशा मौजूद रहता है और उसे हमेशा कहता रहता है कि क्या कर रहे हो बुरा, क्या कर रहे हो बुरा, कुछ अच्छा करो, अच्छा करो। पापी से पापी के भीतर भी पुण्यात्मा आवाज दिये चला जाता है, कुछ अच्छा करो, कुछ

अच्छा करो। और अच्छे आदमी के भीतर भी बुरा आदमी सदा मौजूद है। वह सदा कहता है कि किस पागलपन में पड़े हो। क्या अव्यवहारिक, 'इम्प्रैक्टिकल' हुए जा रहे हो, कुछ बुरा करो नहीं तो चूक जाओगे। बाकी लोग बुरा किये आगे बढ़े जा रहे हैं। तुम चूके चले जा रहे हो। अच्छे आदमी के भीतर बुरा आदमी पूरे वक्त कह रहा है बुरा करो, पछताओगे, क्या कर रहे हो। सब खो दोगे। सब बरबाद हो जायेगा।

अच्छे आदमी के भीतर बुरा आदमी दबा हुआ है और बुरे आदमी के भीतर अच्छा आदमी दबा हुआ है। ध्यान दोनों से मुक्त हो जाना दोनों में से किसी का भी पकड़ नहीं लेना है। और दोनों से केवल वही मुक्त हो सकता है जो कोई चुनाव ही नहीं करता। जो कहता नहीं कि ये अच्छा है, जो कहता नहीं कि ये बुरा है। जो दोनों को ही देखता रहता है और कहता है तुम भी हो, तुम भी हो। जो गुलाब के फूल के पास जाता है। फूल को भी कहता है तुम भी हो और कांटे को भी कहता है तुम भी हो। न कहता कि कांटे को चुनेंगे, न कहता गुलाब को चुनेंगे। चुनाव ही नहीं करता। गुलाब के पास चुपचाप बैठ जाता है। फूल और कांटे सभी एक साथ स्वीकार कर लेता है। और ध्यान रहे, एक क्रांति घटित हो जाती जब फूल और कांटे को कोई एक साथ स्वीकार करता है। तो फूल और कांटे एक दूसरे को काट कर बिदा हो जाते हैं। पीछे कुछ भी शेष नहीं रह जाता। जब कोई बुरे और अच्छे दोनों को एक साथ स्वीकार कर लेता है तो बुरा और अच्छा दोनों एक दूसरे को काट देते हैं और पीछे कुछ भी शेष नहीं रह जाता है। ध्यान है वो अवस्था जहां न बुरा रह गया, न अच्छा रह गया।

अगर आपने अच्छे को बचाने की कोशिश की और बुरे को हटाने की कोशिश की तो अच्छे आदमी बन सकते हैं, साधु बन सकते हैं। सन्त नहीं, साधु और सन्त के फर्क को समझ लेना। साधु वह है जो अच्छा है। असाधु नहीं है, बुरा नहीं है। सन्त वह है जो न साधु है, न असाधु है। जो दोनों के बाहर चला गया। अगर अच्छे को बचाया तो ज्यादा से ज्यादा साधु बन सकते हैं और पीछे असाधु सदा मौजूद रहेगा। और प्रतीक्षा करेगा कि जब आप साधु से ऊब जायें तो असाधु हो जायें। और हर चीज से ऊब हो जाती है। अगर एक आदमी २४ घंटे साधु रहे तो साधु होने से भी ऊब जाता है। वो भी छुट्टी चाहता है थोड़ी देर के लिये कि साधु न रह जाय। इसलिये साधु को भी असाधु होने का मौका मिलता हो तो वो छोड़ता नहीं। उस मौके का उपयोग कर लेता है। असाधु भी असाधु होने से ऊब जाता है। इसलिये बुरा से बुरा आदमी भी किसी क्षण में बिल्कुल साधु मालूम पड़ता है। किसी क्षण में ऐसे काम करता है जो साधु भी न कर सके। वो भी ऊब जाता है, 'मोनोटोनस' हो जाता है। बुरे आदमी अच्छे काम कर लेते हैं, अच्छे आदमी बुरे काम कर लेते हैं। और जिसे हमने जोर जबरदस्ती से पकड़ा है वह थोड़ी देर में थक जाता है। अगर मैं मुट्ठी को बाँधे रहूं, बाँधे रहूं और जबरदस्ती से तो कितनी देर बाँधे रहूंगा ? थक जाऊंगा, फिर मुट्ठी खुल जायेगी। अगर में दौड़ूं ताकत से दौड़ता रहूं, दौड़ता रहूं तो कितनी देर दौड़ता रहूंगा ? फिर पैर थक जायेंगे और गिर जाऊंगा। जो भी प्रयास से हम करेंगे तो थक जायेंगे। अगर हम अच्छे हुए प्रयास से तो थकान आ जायेगी, फिर हमें बुरा होना पड़ेगा। अगर बुरे हुए प्रयास से, थकान आ जायेगी फिर हमें अच्छा होना पड़ेगा। और ये घड़ी का पेंडुलम बुरे से अच्छे के बीच घूमता रहेगा, जन्मों जन्मों तक।

इसलिये ध्यान बुरे को बुरा नहीं कहता, अच्छे को अच्छा नहीं कहता। वो कहता है, तुम भी हो तुम भी हो, ठीक है। दोनों रहो, हमें सब स्वीकार है। ध्यान की स्वीकृति में वे दोनों बिदा हो जाते हैं, क्योंकि फिर कोई पकड़ नहीं रह जाती, बिदा होने में कोई बाधा नहीं रह जाता। इसलिये जब ऐसा हम पूछते हैं कि क्या बुरे को भी हम स्वीकार कर लें, अस्वीकृति तो प्रारम्भ हो गयी जब हमने कहा कि बुरा है। जब हम कहते हैं कि क्या शूद्र को भी घर में बिठा लें तो जब

हमने शूद्र कहा तभी घर में बिठालने का अस्वीकार हो गया। सवाल यह नहीं है कि शूद्र को घर में बिठाल लें, सवाल यह है कि शूद्र दिखाई न पड़े तभी तो घर में बैठ सकेगा। अगर कभी किसी ने कोशिश करके शूद्र को घर में बिठा लिया तो उस कोशिश में तनाव होगा और वह तनाव शूद्र को शूद्र ही बनाये रखेगा। उसमें कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है। नहीं, वो शूद्र ही न रह जाये। वो बुरा ही न रह जाये। बुरे भले का भाव ही छूट जाय तभी हम बाहर हो सकते हैं। अन्यथा बाहर नहीं हो सकते हैं।

★ एक बात उन्होंने और पूछी है। उन्होंने पूछा है कि जब हम सब मिट जाते हुए देखते हैं कि चिता में सब जल गया, सब समाप्त हो गया, तो फिर 'मैं' भी मिट जता है, तो फिर पीछे 'आब्जर्वर' कौन है, फिर साक्षी कौन है, फिर कौन देखेगा।

हमें ख्याल है कि हमारे भीतर हम ही हैं और कुछ भी नहीं है। इसलिये ये सवाल उठता है कि हम मिट जायेंगे तो देखेगा कौन ? ऐसी ही हमारी हालत है जैसे किसी घर का मालिक घर के भीतर रहता हो और पहरेदार घर के बाहर रहता हो और घर के पहरेदार की मुलाकात न हुई हो बहुत दिनों से, और पहरेदार भूल गया हो कि मालिक है भीतर और मालिक भूल गया हो कि पहरेदार है बाहर, और अगर हम पहरेदार से कहें कि तू अब बिदा हो जा यहां से तो वह कहेगा कि अगर मैं बिदा हो जाऊंगा तो फिर इस घर में रहेगा कौन ? इस घर में फिर कोई बचेगा ही नहीं। जिसको हम 'मैं' कहते हैं वह बिल्कुल काम-चलाऊ पहरेदार है। वह हमारा अस्तित्व नहीं है। असल में हमें चूंकि अस्तित्व का पता नहीं है, आत्मा का पता नहीं है इसलिये हमने एक सब्स्टीट्यूट-आत्मा, एक काम-चलाऊ आत्मा विकसित कर ली है जिसको हम 'मैं' कहते हैं। तो ये 'मैं' पूछता है कि अगर हम बिदा हो जायेंगे तो फिर पीछे बचेगा कौन, जानेगा कौन ? और स्थिति बिल्कुल उल्टी है। जब तक ये 'मैं' है तब तक ही जानने वाला खोजना मुश्किल है कि कहां है, कौन है, कैसा है ?

जिस दिन 'मैं' बिदा हो जाता है उस दिन ही जो शेष रह जाता है वो जानता है, वो देखता है, वो पहचानता है, वो साक्षी है। लेकिन वो आप नहीं हैं, वो मैं नहीं हूं, फिर वो कौन है जो देखता है, जानता है, पहचानता है ? जहां मैं नहीं रह जाता हूं फिर जो शेष रह जाता है वही परमात्मा है। इसीलिये कल मैंने कहा था कि परमात्मा का कोई दर्शन नहीं हो सकता है। परमात्मा तो वह है जिसको सबका दर्शन हो रहा है। परमात्मा द्रष्टा है, दृश्य नहीं। हम कभी उसे देख न पायेंगे। जब हम न होंगे तब जो देखता हुआ रह जायेगा वही परमात्मा है। जब मैं न रहूंगा तब जो देखेगा, वही परमात्मा है।

एक फूल के पास मैं खड़ा हूं या एक आदमी के पास, एक बच्चे के पास, या एक स्त्री के पास मैं खड़ा हूं और उसकी आंखों में देख देख रहा हूं। जब तक 'मैं' हूं तब तक शरीर से ज्यादा कुछ भी दिखायी नहीं पड़ेगा। 'मैं' चला गया, अब वही रह गया जो भीतर है, 'मैं' के अतिरिक्त वही देख रहा है। अब शरीर दिखायी नहीं पड़ेगा। अब दूसरी तरफ भी वही दिखायी पड़ने लगेगा। और ऐसा नहीं दिखायी पड़ेगा कि दूसरी तरफ कोई और दूसरा खड़ा है, ऐसा दिखायी पड़ेगा कि 'मैं' ही वहां भी। वही जो यहां देख रहा है वही वहां भी दिखाई पड़ रहा है।

१८५७ के गदर में एक सन्यासी को अंग्रेजों ने मार डाला था। वे विद्रोह के दिन थे और अंग्रेजों की छावनी के पास से रात एक नंगा फकीर निकल रहा था। उन्होंने उसे पकड़ लिया। उन्होंने समझा कि कोई जासूस है। और जासूस है यह और पक्का हो गया क्योंकि जब वे उससे पूछने लगे तो वह कुछ भी न बोला, बस हंसने लगा। तो उन्होंने समझा कि धोखा देने की कोशिश कर रहा है। वो संन्यासी १५ वर्ष से मौन था इसलिये कुछ बोल नहीं सकता था। वे उससे पूछते थे, तुम कौन हो ? तो वो हंसता था। वे पूछते थे कि क्यों यहां से निकल रहे हो, तो वो हंसता था। फिर उन्होंने उसकी छाती में संगीन डाल दी। जब वह मर रहा था

तब उसने सिर्फ एक शब्द कहा। उसने नियम लिया था कि अंतिम समय तक नहीं बोलूंगा। बस आखरी बार अगर कुछ ख्याल में आयगा तो एक बात बोल दूंगा और बिदा हो जाऊंगा। आखिर बहुत बोलने का मतलब भी क्या है। तो उसने एक ही बात कही। जब उसकी छाती में संगीन भोंकी गई और खून का फव्वारा फूट पड़ा तो उसने उपनिषद् का एक पुराना वचन कहा। उसने कहा, 'तत्वमसि, श्वेतकेतु'। श्वेतकेतु, तू भी वही है। उस मरते हुए संन्यासी को अंग्रेजों ने घेर लिया। और पूछा कि क्या मतलब है। 'दैट दाऊ आर्ट', उसका मतलब क्या? 'तुम वही हो' उसका मतलब क्या है? तो उस संन्यासी ने कहा आज पन्द्रह वर्ष का मौन पूर्ण हो गया। तुमने जब मुझे छुरा भोंका मैं देख सका कि मैं ही मरने वाला हूं मैं ही मारने वाला हूं। इस तरफ भी मैं, उस तरफ भी मैं। वो जो छुरा मार रहा है, वो भी मैं हूं और जिसको छुरा मारा गया है वो भी मैं हूं। १५ वर्ष का मेरा मौन सफल हो गया। आज मैं देख पाया कि दोनों तरफ मैं ही हूं।

लेकिन दोनों तरफ मैं ही हूं ये तभी पता चलेगा, जिसको हम अभी 'मैं' कहते हैं वह चला जाय तब। नहीं तो पता नहीं चलेगा। क्योंकि जिसको हम 'मैं' कहते हैं वह सदा एक ही तरफ है। वो इस तरफ है, उस तरफ तू है। इस तरफ 'मैं' हूं। एक और 'मैं' है। जब ये 'मैं' चला जाता है, वो दोनों तरफ से वही होता है। इस तरफ भी वही, उस तरफ भी वही। वो जागता रहेगा, वो देखता रहेगा। जब 'मैं' मिट जाता है तब जो देख रहा है वही परमात्मा है। तब जो दिखाई पड़ रहा है वह भी परमात्मा है। तब परमात्मा ही है। लेकिन इस 'मैं' को बिदा करने की बात है।

मैंने सुना है कि एक समुद्र के किनारे एक मेला भरा हुआ था। बहुत लोग आये थे और समुद्र के किनारे बड़ी भीड़ थी और लोगों में बड़ा विवाद था। कहानी कहती है कि दो नमक के पुतले भी उस मेले में गये हुए थे। वो भी समुद्र के किनारे खड़े थे। और बड़ा विवाद चलने लगा और लोग पूछने लगे कि समुद्र कितना गहरा है। तो नमक के एक पुतले ने कहा इतनी बातचीत से क्या पता चलेगा मैं जरा डुबकी लगा कर पता ही लगा आता हूं। वो नमक का पुतला कूदा समुद्र में पता लगाने कि कितना गहरा है लेकिन लौटा नहीं। भीड़ थोड़ी देर राह देखती रही। 'क्या हुआ तेरे मित्र को,' उन्होंने दूसरे पुतले से पूछा। उसने कहा कि 'मैं' उसका पता लगा आता हूं। वो भी कूद गया। वो भी नहीं लौटा। सैकड़ो वर्ष बीत गये हैं। अब भी उस दिन वर्ष में उस समुद्र के किनारे लोग इकटठे होते हैं कि शायद वे पुतले लौट आये हों, वे नहीं लौटे। अब वे कभी नहीं लौटेंगे, क्योंकि नमक का पुतला सागर की गहराई का कैसे पता लगा पायेगा। जब तक वो गहराई में जायेगा, जायेगा, जायेगा तब तक बिखर जायेगा, खो जायेगा। वो सागर ही हो जायेगा। नमक का पुतला सागर हो हो जायेगा। जब तक वो गहराई में पहुंचेगा तब तक खुद न रह जायेगा। और जब तक खुद रहेगा तब तक गहराई में न पहुंच पायेगा।

ठीक ऐसा ही कुछ है कि जब तक हम हैं, मैं हूं तब तक परमात्मा के सागर में गहरे उतरना मुश्किल है और जब हम खो जाते हैं, 'मैं' मिट जाता है, तब उतर पाते हैं लेकिन तब कौन उतर पाता है? उस नमक के पुतले को कैसा अनुभव हुआ होगा? थोड़ा सोचें उसकी जगह खड़े करके अपने को। गया था पता लगाने कि सागर की गहराई कितनी है। फिर बिखरने लगा होगा, पिघलने लगा होगा। सागर की गहराई तो पता लग गई होगी। और एक ही तरह से पता लग सकती थी, उसी तरह से पता लगी होगी। सागर की गहराई तो पता लगी होगी, सागर होकर और कोई रास्ता भी नहीं है, सागर की गहराई पता लगाने का। लग गया होगा पता। जब पुतला बिखर कर सागर ही हो गया होगा तो पता भी लग गया होगा गहराई का। लेकिन तब लौटकर कहने का कोई उपाय नहीं रह गया।

हम जैसे जैसे गहरे जायेंगे वैसे वैसे 'मैं' विदा हो जायेगा। गहराई का पता तो लग जायेगा परमात्मा का

लेकिन हम खो जायेंगे। क्योंकि हमारा अस्तित्व सतह का अस्तित्व है, गहराई का अस्तित्व नहीं है। जिसको हम 'मैं' कहते हैं वह सतह का अस्तित्व है। वह गहरे में नहीं जी सकता। वह गहरे में बिदा हो जायेगा, विलीन हो जायेगा। लेकिन जरूर कुछ शेष रह जायेगा और जो शेष रह जाता है, वही है। जो समाप्त हो जाता है वो नहीं है। जो समाप्त हो जाता है वो नहीं है। जो आज समाप्त होता है, कल समाप्त होता है, समाप्त हो जायेगा, वह नहीं है।

हम 'मैं' नहीं हैं। लेकिन हम 'मैं' ही बने हुए हैं। वही हमारा कष्ट है। वही हमारी पीड़ा है। ध्यान 'मैं' का विसर्जन है ताकि हम उसे जान लें, जो है।

* एक और मित्र ने पूछा है एकाग्रता, विचारणा और ध्यान—कन्सेन्ट्रेशन और मेडिटेशन क्या अलग अलग हैं ? ध्यान साकार पर करना है कि निराकार पर ? निर्विकल्प समाधि क्या है ? और निर्विकल्प समाधि कब पूरी होती है, ये कैसे पता चलेगा ?

एकाग्रता, विचारणा और ध्यान बड़ी अलग बातें हैं, न केवल अलग अलग बल्कि बड़ी विरोधी। एकाग्रता का मतलब है कि चित्त एक विचार पर ठहर जाय। लेकिन चित्त भी होगा और विचार भी होगा। चित्त भी होगा और विचार भी होगा। चित्त एक विचार पर ठहर जाय इसका नाम है कन्सेन्ट्रेशन, लेकिन चित्त भी होगा और विचार भी होगा। सिर्फ ठहरा हुआ होगा जैसे कोई फिल्म को एक्सपोज करता है। केमरा खुलता है और फिल्म एक चीज पर ठहर जाती है। केमरा बंद हो गया। फिर फिल्म एक चीज को पकड़ लेती है। फिल्म बड़ी कन्सेन्ट्रेशन है, वह बड़ी एकाग्रता कर पाती है। दर्पण एकाग्रता में नहीं चंचलता में है। कोई भी आये आय, जाये जाय। आता है तो दिखता है, जाता है तो चला जाता है। प्रतिपल दर्पण पर बदलता रहता है सब।

चंचल चित्त में सब बदलता रहता है। एकाग्र चित्त में एक ही चीज ठहर जाती है, फिक्सड हो जाती है। फिल्म के केमरे की तरह रुक जाती है। एकाग्रता में विचार भी है और चित्त भी है।

कन्टेम्प्लेशन में विचारणा है, प्रवाह है। एक विचार, दूसरा विचार, तीसरा विचार, चौथा विचार। लेकिन एक ही चीज के सम्बन्ध में। जैसे एक आदमी ईश्वर के सम्बंध में सोचे, दुकान के सम्बंध में सोचे, फिल्म के सम्बंध में सोचे तो ये कन्टेम्प्लेशन न हुआ, ये चंचल चित्त का प्रवाह हुआ। कुछ भी सोच रहा है। और एक आदमी एक ही धारा में सोचे, ईश्वर के सम्बंध में, तो ईश्वर के सम्बंध में ही सोचे। तो ये कन्टेम्प्लेशन हुआ विचारणा हुई सुसम्बद्ध। लेकिन मेडिटेशन, ध्यान बड़ी अलग बात है।

ध्यान में न तो विचार है, न विचार की धारा है। न एकाग्रता है, न चित्त है जो एकाग्र हो जाय, न चित्त है जो चंचल हो सके। ध्यान में चित्त ही नहीं है। ध्यान मनोनाश है। ध्यान में मन का ही खो जाना है। ध्यान ही कीमती चीज है। न तो एकाग्रता की कोई कीमत है और न विचारणा की कोई कीमत है। कीमत तो है ध्यान की, जहां सब खो जाता है, सिर्फ शून्य ही रह जाता है। और जहां शून्य है वहीं सर्व है। शून्य पूर्ण का द्वार है। जब हम पूरे मिट जाते हैं तब हम पूरे हो जाते हैं। जब हममें मिटने को भी कुछ शेष नहीं रह जाता तब वही शेष रह जाता है जो अमिट है और अमृत है।

इसलिये कन्सेन्ट्रेशन एक प्रकार का तनाव है, टेन्शन है। जब आप एकाग्र करते हैं चित्त को तो चित्त में तनाव होगा, भार पड़ेगा। एकाग्रता पागल भी कर सकती है। जब आप कन्टेम्प्लेशन करते हैं, किसी चीज के सम्बंध में सोचते हैं, सोचते हैं, सोचते हैं तब भी चित्त पर तनाव पड़ता है। लेकिन जब आप ध्यान करते हैं, तब आप कुछ करते ही नहीं। तनाव का कोई सवाल नहीं है। आप सिर्फ अपने को 'लेट गो' में, समर्पण में

छोड़ देते हैं और खो जाते हैं। ध्यान बिल्कुल ही अलग चीज है।

और उन मित्र ने पूछा कि हम साकार पर ध्यान करें कि निराकार पर। तो वो ध्यान को समझ नहीं पाये, जो मैं ध्यान कह रहा हूं। ध्यान का अर्थ है 'किसी पर नहीं'। अगर किसी पर भी हुआ तो वो कन्सेन्ट्रेशन हो जायेगा। चाहे साकार पर हो, चाहे निराकार पर हो। अगर कोई आब्जेक्ट हुआ तो कन्सेन्ट्रेशन हो जायेगा, एकाग्रता हो जायेगी। ध्यान का मतलब है कोई आब्जेक्ट नहीं, कोई विषय नहीं, कोई विचार नहीं। न कोई निराकार, न कोई साकार, कोई भी नहीं। अगर कोई भी वहां रहा तो यहां मैं भी रहूंगा। वहां कोई रहेगा और दोनों के बीच कोई सम्बंध रहेगा। ध्यान का मतलब है दो ही न रहे। अब कोई सम्बंध न रहा। अब तो असम्बंध हो गया। सब चीजें खो गयीं। एक ही होना हो गया। तो ध्यान का मतलब 'किस प्रकार' ऐसा कभी न पूछें। ध्यान 'किस पर'? ये बात ही पूछना गलत है। एकाग्रता किस पर ये वाक्य ये प्रश्न ठीक है। ध्यान 'किस पर'?. नहीं। ध्यान का मतलब है किसी पर भी नहीं। जब आप 'नो--व्हेयर' में होते हैं, कहीं भी नहीं, किसी पर भी नहीं तब आप ध्यान में होते हैं।

निराकार पर तो ध्यान हो ही नहीं सकता क्योंकि जिसका आकार नहीं, उसका ध्यान कैसे करियेगा। हां, जब आप ध्यान में होते हैं तब आप निराकार में हो जाते हैं। निराकार पर ध्यान नहीं कर सकते हैं आप लेकिन जब आप ध्यान में होते हैं तब निराकार ही शेष रह जाता है, सब आकार खो जाते हैं। साकार है जगत्। निराकार है प्रभु। लेकिन हम जगत् से इस भांति चिपटे हैं कि प्रभु को भी बिना आकार में ढाले नहीं पकड़ पाते हैं। तो हम शकलें बनाते हैं आदमी की, मूर्तियां बनाते हैं, चित्र बनाते हैं और उन सबको को हम समझते हैं कि हम भगवान हैं।

हम संसार के ही रूप में भगवान को जब तक ढाल नहीं लेते तब तक हमें तृप्ति नहीं मिलती। हमारे सारे मंदिर, हमारी सारी मूर्तियां भगवान को संसार की शकल में ढालने की चेष्ठाएं हैं। परमात्मा का मतलब है निराकार। निराकार का मतलब? निराकार का मतलब जिससे सब आकार पैदा होते हैं और जिसमें सब आकार लीन हो जाते हैं। निराकार का ये मतलब नहीं कि आकार का उल्टा। निराकार का ये मतलब नहीं कि आकार का दुश्मन है। निराकार का ये मतलब नहीं है। निराकार का ये मतलब है कि जिससे सब आकार आते हैं और जिसमें चले जाते हैं। जो सब आकारों का जन्म-दाता और सब आकारों का विलीन कर लेने वाला है। वो निराकार ही हो सकता है। अगर उसका अपना कोई आकार हो तो सब आकारों को वो पैदा नहीं कर सकेगा। आदमी--आदमी को पैदा कर सकता है क्योंकि उसका एक आकार है। शेर--शेर को पैदा कर सकता है क्योंकि उसका एक आकार है। पक्षी--पक्षी को पैदा कर सकता है क्योंकि उसका एक आकार है। पौधा पौधे को पैदा कर सकता है क्योंकि उसका एक आकार है। आकार से आकार ही पैदा होता है। लेकिन जो सभी आकारों को पैदा कर सकता है निश्चित ही उसका अपना कोई आकार नहीं होना चाहिये। अन्यथा वो पैदा नहीं कर सकेगा। जिससे सब आकार पैदा होते हैं और जिसमें वापिस लीन हो जाते हैं वो निराकार है। उस निराकार का आप ध्यान कैसे करेंगे? आप कैसे उसको सोचेंगे, कैसे विचार करेंगे? उसका न विचार हो सकता, न सोचना हो सकता क्योंकि सब सोचना, सब आकार का होता है। फिर क्या करेंगे? हाँ, इतना ही हो सकता है कि आप भी निरा-कार हो जायें तो निराकार से मिल जायेंगे। निराकार तक जाना हो तो स्वयं को निराकार होने के अनुभव में उतारना पड़ेगा।

इसलिये ध्यान निराकार का ध्यान नहीं है। ध्यान से निराकार का ध्यान आ जाता है। जब हम ध्यान में डूबते हैं तब निराकार का बोध होने लगता है कि निराकार है, अरूप है, सर्व है। उसकी हमें प्रतीति होने लगती है। लेकिन खुद को मिटना पड़ेगा तभी हम उसकी प्रतीति कर सकते हैं। एक बूंद अगर सागर का

अनुभव करना चाहे तो सागर में उसे डूब जाना चाहिये। फिर वह सागर का अनुभव कर लेगी। लेकिन अगर एक बूंद बूंद ही रहना चाहे और कहे कि मुझे सागर का अनुभव करना है लेकिन बूंद रहकर। तो सागर के अनुभव का कोई उपाय नहीं है। और बूंद अगर बूंद रहकर सागर की कल्पना भी करेगी बेचारी बूंद, बूंद सागर की कल्पना कितनी करेगी, कितना बड़ा सागर सोचेगी। अपने से बड़ा हम कुछ भी नहीं सोच सकते। इसलिए हर आदमी अपने को सबसे बड़ा समझता है। उसकी उसमें कोई कठिनाई नहीं है। उसका कारण कुल इतना है कि अपने से बड़ा हम सोच ही नहीं सकते। हम ही सोचेंगे ना तो हमसे बड़ा हम कभी भी सोच ही नहीं सकते। इसलिये हर आदमी अपने को सबसे बड़ा समझे हुए बैठा है। बड़ी दिक्कत में पड़ता है इस बात से लेकिन समझे बैठा हुआ है। कहता हो या न कहता हो लेकिन अपने को सबसे बड़ा हर आदमी समझे हुए है।

मैंने सुना है कि अरबी में एक मजाक है। और मजाक बड़ा पुराना है। कहना चाहिये कि सबसे पहला मजाक है। उसके बाद ही सब मजाक निकले होंगे। और वो मजाक है परमात्मा ने आदमी के साथ जो किया है। मजाक ये है की परमात्मा जब एक एक आदमी को बनाकर दुनिया में धक्का देने लगता है तो उसके कान में कह देता है कि तुमसे बड़ा आदमी मैंने कभी नहीं बनाया। और सभी से कह देता है। और हरेक आदमी यही ख्याल लेकर दुनिया में आता है कि मुझसे बड़ा कोई भी नहीं है। फिर वो इसी को बेचारा सिद्ध करने में लगा रहता है जिंदगी भर। क्योंकि अगर बिना सिद्ध किये कहे कि मुझसे बड़ा कोई भी नहीं है तो लोग पूछें कि मकान कहां है, कितना बड़ा मकान है? तो बड़ी मुश्किल हो जाय। धन कितना है पास में, तिजोड़ी कहाँ है, बैंक बैलेंस क्या है? तो बड़ी मुश्किल हो जाय। तो जिंदगी भर वो इस कोशिश में रहता है कि इन्तजाम कर दूं, फिर घोषणा कर दूंगा, कि सबसे बड़ा हूं। देखो मकान, देखो धन, देखो पद। वो इस दौड़ में इसलिये लगता है कि वो भीतर जो भाव बैठा है कि मुझसे बड़ा कोई भी नहीं है इसको सिद्ध करने के लिये प्रमाण भी तो चाहिये। ऐसा ही कहियेगा तो कौन मानेगा? तो पहले दिल्ली के सिंहासन पर बैठ जाना जरूरी है तभी कह सकते हैं कि देखो मुझसे बड़ा कोई भी नहीं है। वो जो सिंहासन पर नहीं बैठा है वो भी यही जानता है कि मुझ से बड़ा कोई भी नहीं है लेकिन अभी घोषणा नहीं कर सकता है। क्योंकि घोषणा करेगा तो लोग कहेंगे कि प्रमाण क्या है?

जिन्दगी भर हम यश, पद और धन की खोज से प्रमाण जुटाते हैं इस बात का कि मुझसे बड़ा कोई भी नहीं है। हम अपने से बड़ा सोच भी नहीं सकते। इसमें कोई कसूर भी नहीं है। ये स्वाभाविक नियम है कि हम अपने से बड़ा कैसे सोच सकते हैं। बड़े से बड़ा जो हम सोच सकते हैं वो हम ही होंगे। बूंद अगर सागर को सोचेगी भी तो कैसे सोचेगी बस बूंद से बड़ा नहीं सोच सकती है। कोई उपाय नहीं है सोचने का। बूंद के पास खोपड़ी भी तो बूंद की ही है। वो उतनी ही सोच पायेगी। वो कहेगी अच्छा ठीक है, ठीक हमारे बराबर होगा और क्या।

इसलिये हम जब भगवान को सोचते हैं, देखें जाकर, मंदिर की लम्बाई ऊंचाई नापें तो आदमी की लम्बाई ऊंचाई नाक-नक्शा, सब आदमी का है। वो हमने बराबर अपना ही सोचा हुआ है। देखें जाकर मंदिर में। भगवान की जरा लम्बाई चौड़ाई नापें, वजन वगैरह निकालें, वो ठीक हमारे बराबर, हमारी साइज के हैं। नीग्रो बनाता है तो चपटी नाक बनाता है, घुंघराले बाल बनाता है। चीनी बनाता है तो दोनों गाल की हड्डियां भगवान की निकली रहती हैं। क्योंकि चीनी करेगा क्या बेचारा। भगवान को बनायेगा तो चीनी शकल में ही बना सकता है ना। इससे ज्यादा कैसे सोच सकता है। और ऐसा कैसे हो सकता है कि भगवान चीनी न हो, ऐसा कैसे हो सकता है। अंग्रेज कैसे सोच सकता है कि भगवान किसी और भाषा में बोलता होगा। ब्राह्मण कैसे सोच सकता है

कि संस्कृत के अलावा और कोई 'डेव्हाइन लैंग्वेज' है, कोई ईश्वरीय भाषा हो सकती है। संस्कृत ईश्वरीय भाषा है। वो ब्राह्मण की खोपड़ी इससे आगे नहीं जा सकती है वो संस्कृत बोलता है तो भगवान को भी संस्कृत ही बोलना चाहिये, और कोई उपाय नहीं है।

हम अपने में ही सोच पा सकते हैं, उससे आगे हम नहीं जा सकते हैं। तो हम सोच तो नहीं सकते निराकार को, हम अपना ही आकार सोच सकते हैं। फिर ध्यान का क्या मतलब ? ध्यान का मतलब है अपने को मिटा देना ताकि निराकार प्रकट हो जाय। निराकार का ध्यान नहीं करना है ध्यान करने से निराकार प्रकट होता है। वो 'कान्सीक्वेंस' है, परिणाम है, ध्यान का फल है।

★ और उन मित्र ने पूछा है कि हमें कैसे पता चलेगा कि हम समाधि को उपलब्ध हो गये हैं।

पता चल जावेगा, बस समाधि को उपलब्ध हो जावें। आपको कैसे पता चलता है जब पैर में कांटा गड़ता है, कि पैर में कांटा गड़ गया है। आपको कैसे पता चलता है जब किसी से प्रेम हो जाता है कि प्रेम हो गया। किससे पूछने जाते हैं ? किस डाक्टर से जाकर जांच करवाते हैं कि जरा मेरे हृदय की जांच करिये कि प्रेम हुआ कि नहीं हुआ ? नहीं, बस आप जान लेते हैं कि प्रेम हो गया। और जब कांटा गड़ जाता है तो सारी दुनियां कहे कि प्रमाण लाओ। आप कहते हैं प्रमाण की क्या जरूरत, चुभ रहा है। मैं जानता हूं कि कांटा गड़ गया है।

जिस दिन समाधि का अनुभव आता है उस दिन किसी से पूछने नहीं जाना पड़ता है, न कोई तराजू पर तौलना पड़ता है। बस आप जान लेते हैं कि हो गया। अभी आप कैसे जानते हैं कि आप अशांत हैं ? कैसे जानते हैं कि चिन्तित हैं कैसे जानते हैं कि दुखी हैं ? मुझसे पूछते हैं ? बिना पूछे जानते हैं। जिस दिन चिन्तित न रह जायेंगे, दुखी न रह जायेंगे, जिस दिन शांत हो जायेंगे, आनन्दित हो जायेंगे उस दिन भी जान लेंगे। इसलिये ये मत पूछिये कि हम कैसे जानेंगे कि समाधि मिल गयी। बस आप जान लेंगे। परमात्मा मिल जायेगा और आप जान न पायेंगे किसी और से पूछने जाना पड़ेगा ? नहीं, बिल्कुल जान लेंगे।

उससे बड़ा कोई अनुभव नहीं है, जब वह आता है तो सब बहा ले जाता है। जैसे नदी में पूर आ जाता है और किनारे का सारा कचरा बहकर चला जाता है। किनारा कैसे जानता होगा कि पूर आ गया ? जिस दिन परमात्मा की प्रतीति होती है सब बह जाता है। कचरा ही नहीं, किनारा भी। सब बह जाता है। सब नया और ताजा हो जाता है। सब आनन्दपूर्ण हो जाता है। सारी जिन्दगी और हो जाती है। सब अंधेरा खो जाता है। सब दुख, सब पीड़ा चली जाती है। इसको भी पूछना पड़ेगा कि कैसे जानेंगे। नहीं, जान ही लेंगे। कोई उपाय नहीं कि आप न जान पायें। जान ही लेंगे, इसलिये इसकी फिक्र मत करें कि कैसे जानेंगे। जायें और जानें।

एक अंधे आदमी की आंख ठीक हो जाय, वो अंधा आदमी पूछ सकता है कि जब मेरी आंख ठीक हो जायगी तो मैं कैसे जानूंगा कि आंख ठीक हो गयी। अभी भी कोई जानना पड़ेगा उसे ? आंख ठीक हो गयी तो जान ही लेगा। क्योंकि आंख ठीक होते ही वो दिखाई पड़ना शुरू हो जायेगा जो कभी दिखाई नहीं पड़ा था। आंख ठीक होते ही प्रकाश व रंगों की दुनियां शुरू हो जायगी जो पहले कभी भी नहीं थी। आंख ठीक होते ही आकार दिखाई पड़ने शुरू हो जायेंगे जो कभी भी नहीं थे। उससे कुछ पूछना पड़ेगा ? क्या अंधा पूछेगा कि मैं कैसे मानूं कि अब मुझे दिखाई पड़ने लगा है ?

जिस दिन परमात्मा की तरफ हमारी समाधि की आंख खुलती है उस दिन हम उस नये को जानते हैं जिसे हमने कभी नहीं जाना है। उसे पहचान लेते

हैं जिसे कभी पहचाना नहीं है। वो मंजिल आ जाती है जो कभी नहीं आयी थी। वो उपलब्ध हो जाता है जिसके आगे उपलब्ध करने को फिर कुछ शेष नहीं बचता है। वो हम जान लेंगे। उसके लिये कोई मापदंड, कोई तराजू, कोई क्राइटेरियन न है, न होने की कोई जरूरत है।

● एक मित्र ने पूछा है कि ध्यान में कुछ क्षणों के लिये अद्भुत आनन्द का अनुभव होता है। ये क्षण लम्बे कैसे हो जायें ? ये आनन्द और लम्बा और स्थायी कैसे हो जाये ?

अगर ऐसी आकांक्षा की तो वो जो थोड़े से क्षण अभी होते हैं वे भी बन्द हो जायेंगे। अभी वो जो एकाध् क्षण को आनन्द मिलता है अगर ऐसा चाहा कि ये स्थायी कैसे हो जाये, ये सदा कैसे रहने लगे तो वो क्षण में भी जो आता है वो भी खो जायेगा। क्योंकि इतने लोभ से भरे हुए चित्त में आनन्द का उत्पन्न होना असंभव है, ये लोभ है। एक क्षण को भी आनन्द उपलब्ध होता है, भगवान को धन्यवाद देवें और चुप हो जावें। उससे आगे आकांक्षा मत करना कि ये क्षण फिर आये कल। रोज आये। ठहर जाये क्योंकि जब हम ऐसा कहेंगे कि कल भी आये, आये, आये, रोज आये, ठहर जाये। तो वह क्षण हमारे लाने से नहीं आया था, अनायास आया था और जब हम इतनी तेजी से कहेंगे कि रोज आये, ठहर जाये,, लम्बा हो जाये तो प्रयास (एफर्ट) शुरू हो जायगा, फिर वो नहीं आयेगा। फिर वो कभी नहीं आयेगा।

लेकिन हमने पूरी जिन्दगी मे ऐसा किया है। अगर आज आप मेरे पास आयें और मैं प्रेम से आपको हृदय में लगा लूं तो आप कहते हैं कि कल भी जब मैं जाऊं तो आप इतने ही प्रेम से हृदय से लगाना। कल का भी आप आज ही पक्का कर लेना चाहते हैं। कुछ पक्का नहीं है। आज का हमने कब पक्का किया था। अनायास ही ये घटना घटी है। कल घट सकती है लेकिन अनायास ही। लेकिन हम पक्का कर लेते हैं तब प्रेम की घटना बन्द हो जाती है। और प्रेम की जगह अभिनय की घटना शुरू हो जाती है। फिर हमें हाथ जोड़कर नमस्कार करना पड़ता है क्योंकि कल भी किया था। नहीं करेंगे तो बड़ी मुसीबत होगी। कोई क्या सोचेगा। फिर किसी को हृदय से लगाना पड़ता है, प्रेम की बातें करनी पड़ती हैं क्योंकि कल की थीं, अगर न करेंगे तो कोई क्या सोचेगा। तब सब झूठा हो जाता है। सब झूठा होता चला जाता है।

जिन्दगी में पुनरुक्ति की आकांक्षा ने हमारी सारी जिन्दगी को खराब कर दी है। पुनरुक्ति की आकांक्षा ही मत करना। क्षण आया है, धन्यवाद दे देना परमात्मा को और कभी मत कहना कि दुबारा आये। आये तो ठीक है स्वागत है। न आये तो स्वागत है। न आये तो स्वागत है। ऐसी चित्त की दशा में ही वो आयेगा। ज्यादा आयेगा। कभी ठहर भी जा सकता है। लेकिन अगर हमने आकांक्षा की कि रोज आना चाहिये। निरंतर मुझे ऐसा लगता है, न मालूम कितने मित्र लिखते हैं कि पहले जो अनुभव हुआ था अब वो नहीं होता है। क्योंकि वे इतने जोर से उस अनुभव को लाना चाहते हैं कि उसे लाने की इच्छा तनाव बन जाती है। वे रिलैक्स नहीं हो पाते। अगर आप कल ध्यान में बैठे थे तो कुछ पता न था कि आनन्द आयेगा कि न आयेगा। आप रिलैक्स बैठे थे, आ गया था। अब आज आप बैठे हैं तो आप पक्का ख्याल रखे हैं कि अब आयेगा, अब आयेगा, अभी तक नहीं आया है। तो आप रिलैक्स नहीं हो पा रहे हैं। तनाव बना हुआ है। वो कैसे आयेगा। वो कल आया इसीलिये था कि आप रिलैक्स हुए थे। आज आप रिलैक्स नहीं हो रहे हैं, शिथिल नहीं हो रहे हैं, वो कैसे आयेगा। और जिसके मन में आकांक्षा है कुछ आने की वह कभी भी शिथिल नहीं हो सकता है। वो तना ही रहेगा। तना ही रह जायगा।

इसलिये भूलकर भी ध्यान में आये क्षणों को दोहराने की आकांक्षा मत करना। वे आयेंगे। अपने से आयेंगे, आते रहेंगे, और न आयें, तो न आने के लिये

भी राजी हो जाना। आयें तो भी स्वागत न आयें तो भी स्वागत। जिस दिन आप उनके न आने का भी स्वागत कर सकेंगे उस दिन वे आपके घर आ ही जायेंगे, ठहर ही जायेंगे। फिर वे जायेंगे ही नहीं। न आने का भी जिस दिन उतना ही स्वीकार हो जायेगा, जितना आने का है, उसी दिन वे ठहर जायेंगे, फिर वे जायेंगे ही नहीं। फिर वे कभी जाते ही नहीं।

आनन्द वहीं ठहरता है जहां आनन्द की आकांक्षा भी विलीन हो जाती है। आनन्द वहीं रुकता है जहां अशांति को भी स्वीकार करने की क्षमता है। ये उल्टा दिखायी पड़ता है, लेकिन ऐसा ही है। मन तो यही करता है कि जो सुख मिला वो बार बार मिले। और बार बार मिलने की आकांक्षा से तो वो फिर कभी भी नहीं मिलता है। वो मिल ही नहीं सकता है। जीवन में सब महत्वपूर्ण अनायास ही आता है। आता है, आता है लाया नहीं जा सकता है। जिस दिन लाने लग जायेंगे उसी दिन कठिनाई शुरू हो जायेगी।

★ एक मित्र ने पूछा है कि क्या ध्यान ही काफी है? क्या कोई राम नाम या प्रार्थना जोड़नी उचित नहीं है।

फिर वे नहीं समझ पाये ध्यान को। अभी वे कुछ जोड़ना चाहते हैं। वे समर्पण नहीं समझ पाये। समर्पण का मतलब है कि अब और कुछ जोड़ने को नहीं है कुछ करने को नहीं है। समर्पण का मतलब है कि करने वाला ही हमने छोड़ दिया। अब कौन राम-नाम जपेगा? और कौन माला फेरेगा और कौन हाथ जोड़कर प्रार्थना करेगा? समर्पण का मतलब है कि समर्पण करने वाला ही नहीं है। हम कर्त्ता ही नहीं। हमने छोड़ दिया है। तब आप पूछते हैं कि और क्या? जैसे कि कोई पूछे कि क्या शून्य हो जाना काफी है कुछ और करें? शून्य हो जाने का मतलब है कि अब करने को कुछ भी शेष न रहा। समर्पण का मतलब है कि अब करने वाला ही मौजूद न रहा। हमने छोड़ दिया है अपने को। अब जो होगा, होगा।

जैसे मैंने कहा कि नदी में बहें। अब एक आदमी पूछे कि बहना ही काफी है या कुछ और करें? लेकिन जब आप कुछ करेंगे तो बहना रुक जायेगा। आपका सब करना बहने को रोक देगा। अब मैंने कहा कि चिता में जलें और सब समाप्त हो जाये। आप कहें कि ठीक है, जल गये और भी कुछ करें कि इतना काफी है? अब और करने को क्या बचा? करने को 'करने वाला' कहां बचा। मैंने कहा सब स्वीकार कर लें, तथाता टोटल एक्सेप्टेबिलिटी। आप कहते हैं, सब स्वीकार कर लिया अब और भी कुछ स्वीकार करना है? सब स्वीकार का क्या मतलब हुआ जब आप कहते हैं और भी कुछ स्वीकार करना है?

ध्यान का अर्थ है समर्पण, सरेन्डर। और समर्पण कभी भी आधा नहीं होता। आप ऐसा नहीं कह सकते कि मैंने आधा समर्पण किया है, आधा नहीं। आधा समर्पण होता ही नहीं। जैसे आधा वृत्त नहीं होता, सर्किल होता है तो पूरा होता है, नहीं तो नहीं होता है। अगर कोई कहे कि हमने आधा सर्किल बनाया है, तो हम कहेंगे कि पागल हो। क्योंकि सर्किल का मतलब होता है पूरा गोल घेरा। आधा सर्किल होता ही नहीं।

आधा समर्पण भी नहीं होता। आधा प्रेम भी नहीं होता। कोई आदमी कहे कि आधा-आधा प्रेम करते आपको। तो कहेंगे कि नहीं ही करते होंगे यही कहना उचित है। आधा कहीं प्रेम हुआ है? प्रेम होता है तो पूरा अन्यथा नहीं, नहीं। कभी किसी आदमी को आधा मरा हुआ देखा है क्योंकि अगर वह आधा मरा हुआ है तो वह जिन्दा ही होगा, किसी न किसी हालत में जिंदा ही होगा। वो मरा हुआ हो ही नहीं सकता। मरता है कोई तो पूरा मरता है अन्यथा नहीं मरता है। या तो जिन्दा या मरा। इन दोनों के बीच में और कोई जगह नहीं होती कि वहां खड़ा हो जाय, कि कहे कि न हम मरे, न हम जिन्दा। हम आधे जिन्दा, हम आधे मरे। तो वह आदमी जिन्दा ही है, वो जिन्दा ही है। वो मरा नहीं है। समर्पण पूरा है। इसलिये यह प्रश्न न पूछें।

उन्होंने पूछा है कि क्या ध्यान पर्याप्त है, इनफ हैं ; ध्यान है समर्पण और समर्पण सदा पर्याप्त है उसके आगे कुछ भी करने को नहीं बच जाता। असल में करना छोड़ने का नाम ही समर्पण है, कि हमने करना ही छोड़ दिया।

नाम जाप से क्या लेना देना है ; नहीं, लेकिन हमें कुछ करने को चाहिये। असल में न करने में हम बड़े घबड़ाते हैं क्योंकि न करने में मिटने का डर है। तो हम कहते हैं कि कुछ करने को बता दें माला फेरें, राम राम जपें, कुछ करें। करने में हम फिर शेष हो जाते हैं : हम फिर खड़े हो जाते हैं। कर्त्ता फिर मौजूद हो जाता है। मैं फिर मौजूद हो जाता हूं। फिर हम कह सकते हैं कि मैं रोज राम राम जपता हूं मैं रोज माला फेरता हूं। मैं रोज मंदिर जाता हूं। लेकिन ध्यान रहे आप किसी से यह नहीं कह सकते कि मैं रोज ध्यान करता हूं, क्योंकि यह वाक्य ही गलत होगा। ध्यान का मतलब ही है कि रोज आप 'न करने में' चले जाते हैं। इसलिये आप दावा नहीं कर सकते कि रोज ध्यान करता हूं। और अगर कोई आदमी दावा करे कि मैं रोज ध्यान करता हूं, तो समझना कि उसने ध्यान को समझा नहीं। क्योंकि ध्यान का मतलब था समर्पण। ध्यान का मतलब था कर्ता होने के भाव को छोड़ देना। वो डूअर, कि कर्त्ता हूं, यह भाव छोड़ देना।

इसलिये ध्यान पर्याप्त है। उसमें कुछ जोड़ने की आवश्यकता नहीं है।

★ एक मित्र ने पूछा कि आप कहते हैं सब स्वीकार कर लें। तो फिर क्रांति कैसे आयेगी, बदलाहट कैसे आयेगी ?

निश्चित ही सब स्वीकार करने से आप क्रांति 'कर' न सकेंगे। बदलाहट 'कर' न सकेंगे। लेकिन क्रांति आ सकती है, बदलाहट आ सकती है। सर्व स्वीकार से कुछ आप निष्क्रिय नहीं हो जाने वाले हैं, बल्कि पूर्ण सक्रिय हो जावेंगे। जिस व्यक्ति ने सब स्वीकार कर लिया इसका ये मतलब नहीं है कि वो अब कुछ भी न करेगा। अब इसका मतलब केवल इतना है कि अब वो जो भी करेगा, वो जानेगा कि परमात्मा ही उससे कर रहा है, मैं नहीं कर रहा हूं। सर्व स्वीकार का ये मतलब नहीं है कि अब आप श्वांस न लेंगे। सर्व स्वीकार का इतना ही मतलब है कि आप श्वांस न लेंगे, अब परमात्मा ही श्वांश लेगा। सर्व स्वीकार का ये मतलब नहीं कि क्रांति असंभव हो जायेगी। सर्व स्वीकार का ये मतलब है कि अब परमात्मा ही क्रांति करेगा। अब आप क्रांति नहीं करेंगे। और जिस दिन परमात्मा क्रांति करेगा उसी दिन क्रांति हो सकती है। आदमी की, की गई क्रांति, क्रांति नहीं हो सकती है। रुग्ण, परेशान, बीमार, चिन्तित दुखी आदमी क्या क्रांति करेगा ? क्रान्ति के नाम पर शायद तोड़ फोड़ ही कर देगा। और कुछ भी नहीं करेगा। क्रोध जाहिर कर देगा और कुछ भी नहीं करेगा। सर्व स्वीकार से आती है करुणा। लानी नहीं पड़ती है। मैं आपसे नहीं कहता हूं कि करुणा करें। आप क्या करुणा करेंगे, आप कैसे करुणा कर सकते हैं ? सर्व स्वीकार से आती है करुणा, कम्पेशन पैदा होता है।

बुद्ध से किसी ने पूछा कि आप बड़े करुणावान हैं। बुद्ध ने कहा कि किसी ने तुम्हें गलत खबर दे दी होगी। मैंने तो कभी करुणा नहीं की। उस आदमी ने कहा, आप क्या कहते हैं ? हमने तो यही सुना है कि आप महा-कारुणिक हैं। आप से ज्यादा करुणा किसी में भी नहीं है। बुद्ध ने कहा कि ये हो सकता है कि मुझ में करुणा हो। लेकिन मैंने करुणा कभी नहीं 'की' मैं कभी करुणा 'करने' गया ही नहीं। मैं इस झंझट में नहीं पड़ा। ये हो सकता है कि करुणा मुझसे निकली हो। लेकिन मैंने कभी नहीं निकाली। किस पौधे से फूल निकाला गया है ? फूल निकलते हैं। और अगर आप पौधे से पूछने जायें कि तुमने बड़ा अच्छा गुलाब का फूल निकाला है और अगर पौधा कह सके तो वो कहे कि आप भी कैसी बातें करते हैं, मैंने कभी नहीं निकाला। निकला है, अपने आप निकला है।

जिस दिन कोई सर्व स्वीकार में समर्पित हो जाता है, करुणा निकलती है, क्रांति निकलती है । क्रांति करनी नहीं है । क्रांति को आने देना है । अगर ठीक से कहें तो ये कह सकते हैं कि क्रांति को रोकना नहीं है । क्रांति को आने देना है । सर्व स्वीकार की अपनी क्रांति है । उस क्रांति का अर्थ वो नहीं है जो कि अब तक क्रांतिकारी समझता रहा है । क्रांतिकारी समझता है कि 'हम' क्रांति कर रहे है । 'हम' बदलाहट ला रहे हैं । और इस 'हम' की वजह से कोई बदलाहट नहीं आ सकती है । क्योंकि 'हम' ही पुराना रोग था, वो फिर नयी शकल में खड़ा हो जाता है । वो वहीं का वहीं खड़ा रहता है । उससे कोई फर्क नहीं हो पाता है । इसलिये मैं जिस क्रांति की बात कर रहा हूं वो, वो क्रांति नहीं है जो आप लायेंगे । वो वह क्रांति है जो अगर आप समर्पित हो जायें तो आ सकती है । इन दोनों बातों के भेद को ठीक से समझ लेना चाहिये ।

एक मित्र हैं । उनको नींद नहीं आती है । उनसे मैंने कहा कि आपको नींद आ सकती है लेकिन कृपा करके आप लाने की कोशिश मत करें । उन्होंने कहा अगर मैं नहीं लाऊंगा तो नींद आयेगी कैसे ? उनकी दलील तो बिल्कुल ठीक है । उन्होंने कहा कि मैं न लाऊंगा तो नींद आयेगी कैसे ? मैंने कहा, आप पूरी ही कोशिश कर लें । आपसे जितना बन सके उतनी कोशिश कर लें । अच्छा हो कि आप मेरे पास ही रुक जायें । वो आ गये और मेरे पास रुक गये । और तीन दिन रोज सुबह मैं उनके पास जाकर पूछता कि ला पाये नींद ? वो कहते बड़ी मुश्किल हो गयी है । पहले थोड़ी बहुत आती थी वो भी मुश्किल हो गयी है । लाने की कोशिश कर रहा हूं और वो खोती चली जा रही है । मैंने कहा कि पूरी ताकत लगा लें ताकि ठीक से असफलता का पता चल जाय, पूरी ताकत लगा लें । आप जो जो कर सकते हैं, करलें । क्या क्या करते हैं ? उन्होंने कहा कि रामनाम भी जपता हूं, हाथ पैर भी धोता हूं, खड़ा भी होता हूं आंखें भी बन्द करता हूं । सब कोशिश करता हूं, लेकिन दो रात हो गयी नींद पलक भर को नहीं है । मैंने कहा कि कोशिश कर लें अन्यथा ऐसा न रह जाये मन में कि कोशिश कम थी इसलिये नींद नहीं आ पाई । तीन दिन में वे बिल्कुल पगला गये । उन्होंने कहा कि ये तो बड़ा मुश्किल मामला हो गया है । तब मैंने कहा कि आज रात कोशिश न करें । अब आज रात कोशिश करें ही मत । अब आज रात कृपा करके कुछ भी न करें, पड़े रहें, जो होना हो, हो जाय । सुबह मैं गया तो वे काफी घुर्राटे ले रहे थे । मैंने उन्हें हिलाया । मैंने कहा कि क्या कर रहे हैं ? उन्होंने कहा कि नींद आ गयी ।

नींद आती है लायी नहीं जा सकती है । और अगर आपको ख्याल आ गया कि लाना है कि आप इनसोमनिया के मरीज हो ही जाने वाले हैं । अनिद्रा आपको पकड़ ही लेगी । इस समय पृथ्वी पर अनिद्रा से पीड़ित बहुत लोग हैं । और उसका सबसे बुनियादी कारण यह है कि वे यह सोचते हैं कि नींद को भी लाना पड़ेगा । बस फिर नींद खो जायेगी ।

क्रांति आयेगी । लानी नहीं है । लायी गयी क्रांति दो कौड़ी की है । और लायी गयी क्रांति हम ही तो लायेंगे ना, कन्फयूज्ड, भ्रमित, परेशान लोग । हम ही क्रांति लायेंगे ना । तो हमसे बड़ी क्रांति नहीं आने वाली है । हम सब और गड़बड़ कर देंगे । और सब उपद्रव कर देंगे । नहीं, हम बदल जायें फिर उस बदलाहट से क्रांति आती हो आये ।

इसलिये ऐसा मत सोचना कि जब मैं कहता हूं कि सर्व स्वीकार तो मैं ये नहीं कह रहा हूं जो है वो वैसा ही रहा आयेगा । नहीं, अगर हमने सर्व स्वीकार किया तो हमारे भीतर परमात्मा सक्रिय हो जायेगा । वो इस सारी पृथ्वी को बदल डालेगा । ये सारी पृथ्वी बदल जाने के लिये तैयार खड़ी है लेकिन हमारे भीतर से हम परमात्मा को सक्रिय नहीं होने देते । गरीबी नहीं बचेगी जमीन पर । लोग कहते हैं कि गरीबी है तो भगवान कैसे है ? और मैं कहता हूं कि गरीबी है तो सिर्फ इसलिये कि तुमने भगवान को सक्रिय नहीं होने

दिया है। तुम रोके हुये हो, तुम अकड़े हुए हो। तुम कहते हो कि हम मिटायेंगे गरीबी। हम बनायेंगे, हम ये करेंगे। उससे सब रुका जा रहा है। तुम एक बार सब छोड़ दो और देखो कि गरीबी मिट जायेगी। गरीबी मिट जायेगी, दुख मिट जायेगा, चिंता मिट जायेगी। लेकिन भगवान को सक्रिय होने दो। भगवान पर कृपा करो और भगवान को सक्रिय होने दो। हम सब उसके हाथ पकड़ कर उसे रोके हुए हैं। उसे नहीं होने देते कुछ भी। क्योंकि हमको लग रहा है कि हमें करना है।

वो तो अच्छा है कि माताओं को ख्याल नहीं आता कि बच्चों को उन्हें बड़ा करना है। अगर ख्याल आ जाये तो बच्चों की जान निकल जाये, और जिस जिस मात्रा में उनको ख्याल है कि हमको करना है उस-उस मात्रा में वो बच्चों की जान ले लेती हैं। वो तो बड़ी कृपा है कि मालियों को ख्याल नहीं आता कि फूल हमें निकालने हैं अगर ख्याल आ जाये तो सब फूल खतम हो जायें। माली चुपचाप देखते रहते हैं। खाद देते हैं, पानी देते हैं, अवसर बना देते हैं लेकिन फूलों को निकालते नहीं हैं। फूलों को निकलने देते हैं। वो निकल आते हैं, निकल आते हैं।

जिंदगी में फूल खिल सकते हैं करुणा के, लेकिन आप नहीं, मैं नहीं खिला सकते। हम हट जायें, परमात्मा को सक्रिय होने दें। धार्मिक समाज का अर्थ है वो समाज जिसने परमात्मा को सक्रिय होने दिया है। जिसने अपने को हटा लिया है और परमात्मा को सक्रिय हो जाने दिया है।

एक अंतिम प्रश्न और।

★ एक मित्र ने पूछा है कि स्थित-प्रज्ञ, उपेक्षा और तथाता क्या ये तीनों एक ही बातें हैं, या अलग-अलग हैं ?

उपेक्षा का अर्थ है जो है उसमें हमें कोई रस नहीं है। बल्कि जो है उसमें हमें विरस है, वैराग्य है। इस-लिये उपेक्षा ठीक-ठीक अर्थों में तथाता नहीं है। तथाता में उपेक्षा भी नहीं है। तथाता का मतलब है जो है, वो है। न हमें रस है, न हमें विरस है। न हमें राग है, न हमें विराग है। जो है, वो है। एक आदमी के भीतर काम-वासना है, सेक्स है, क्रोध है, घृणा है। एक आदमी को बड़ा रस है अपनी काम-वासना में। वो उपेक्षा नहीं कर पाता अपनी वासना का। वो बड़ा रसलीन है। वो रागी है। एक आदमी राग के दुख से पीड़ित, परेशान हो गया है। वो कहता है कि हम बड़ी उपेक्षा में हैं, हम छोड़ना चाहते हैं। हमें विराग हो गया है। हम ये काम-वासना से भागना चाहते हैं। वो विरागी है। विरागी का मतलब उल्टा हो गया रागी। जिसने पीठ फेर ली उस तरफ से जहां पहले मुंह था। जहां पहले मुंह करने में मजा आता था, अब उसे वहां पीठ करने में मजा आता है। लेकिन मजा अब भी उसे वहीं आता है, उसमें फर्क नहीं पड़ा है। मजा उसे अब भी वहीं आता है।

एक आदमी स्त्री की तरफ भागा जा रहा है। ये रागी है। और एक आदमी स्त्री से भागा जा रहा है। ये विरागी है लेकिन दोनों के सेंटर में स्त्री है। एक स्त्री की तरफ और एक स्त्री से। लेकिन दोनों का सेंटर स्त्री है। उसमें कोई फर्क नहीं है। एक स्त्री पुरुषों के पीछे पागल है और एक स्त्री पुरुषों से ऊब गई है, उपेक्षा से भर गई है, और भागी जा रही है। और कह रही है सत्संग करेंगे, सत्संग करेंगे। स्त्रियां सत्संग में जाती तब हैं जब वो पुरुषों से ऊब जायें, नहीं तो वे सत्संग में जाती नहीं हैं। जहां वे परेशान हुई जिंदगी में और ऊबीं कि सत्संग में गयीं। सत्संगों में सिवाय फ्रस्ट्रेटेड, सब तरफ से ऊब गये और परेशान हो गये लोगों के और कोई जाता ही नहीं है। वो वहां इकट्ठे हुए हैं सत्संग में। लेकिन उन दोनों का सेन्टर एक है।

उपेक्षा राग के विपरीत है। लेकिन तथाता बहुत और बात है। तथाता का मतलब है कि न हमें राग रहा, न हमें विराग रहा। तथाता का मतलब है कि हमने सेन्टर ही बदल दिया। तथाता का मतलब है कि अब हम इसकी

बात ही नहीं करते, कि सेक्स के पक्ष में कि सेक्स के विपक्ष में। स्त्री की तरफ कि स्त्री से भागते हुए, कि गृहस्थ कि संन्यासी ? अब हम इसकी बात ही नहीं करते। तथाता का मतलब है कि जो है, हमें स्वीकार है। स्वीकृति हमारी पूरी है। न हम उसकी तरफ भागते, न हम उसे छोड़कर भागते। जो हो रहा है, हो रहा है, उसके लिये हम राजी हैं। तथाता बहुत गहरी बात है। उपेक्षा से बहुत गहरी बात है। और स्थित प्रज्ञ का मतलब ?

स्थित-प्रज्ञ का मतलब है जो तथाता को उपलब्ध हो गया। तथाता प्रक्रिया है, मार्ग है, साधना है। स्थित-प्रज्ञ उपलब्धि है। स्थित-प्रज्ञ का मतलब होता है जिसकी प्रज्ञा ठहर गयी। जैसे कोई दिया जलायें। हम तो उसकी लौ कंपती रहती है। हम एक ऐसे कमरे में दिया जलायें, जहां सब तरफ से द्वार दरवाजे बन्द हों। और दिये की लौ कंपती न हो, थिर हो गयी हो, ऐसी ही जब मनुष्य की प्रज्ञा थिर हो जाती है, कंपती नहीं। ये दो तरह से थिर हो सकती है। एक तो इस तरह से थिर हो सकती है कि द्वार दरवाजे हम बन्द कर दें, हवा के झोंके न आयें तो लौ ठहर जाये। जो लोग इस तरह से ठहराना चाहते हैं उनके लिये रास्ता है वैराग्य, उपेक्षा। लेकिन उनका ठहरा होना बड़ा धोखा है। हवा के न आने से लहर न कंपती हो तो लहर का कोई गुण न हुआ ये। ये सिर्फ हवा की गैर मौजूदगी हुई।

जिसको हम संन्यासी कहते हैं वो भी अपने को ठहरा लेता है लेकिन उसके ठहराने में बड़ा श्रम है। द्वार दरवाजे बंद करके ठहरा पाता है, और इसलिये हमेशा डरा भी रहता है कि कोई खिड़की खुली न छूट गयी हो। कोई दरवाजा न खुल जाय कहीं हवा का झोंका जोर से न आ जाय। मकान ऐसी जगह बनाता है जहां हवा न चलती हो। पहाड़ की आड़ में, गुफाओं में छिप जाता है, जहां कि हवा आती ही न हो। लेकिन हवा से बच के जो ठहर गया है वो ठहर नहीं गया है। वो सिर्फ हवा के अभाव में जी रहा है।

वैराग्य से भी कोई स्थित प्रज्ञ की तरफ जा सकता है तब वो सूडो- (Pseudo) स्थित-प्रज्ञ होगा। और तथाता से भी कोई स्थित-प्रज्ञ की तरफ जा सकता है। उसका मतलब ये नहीं कि हवायें अब नहीं आतीं, हवायें आती हैं, लहर हिलती है और फिर भी लहर भीतर से जानती है कि हिलना नहीं हुआ। हवायें आती हैं, ज्योति हिलती है, लेकिन फिर भी ज्योति भीतर से जानती है कि क्या हिला ? कुछ भी नहीं हिला, आओ और हिलाओ, क्योंकि जो हिल रहा है वो रूप है और जो नहीं हिल रहा है वो भीतर है।

बुद्ध एक दिन सुबह आये थे। वो अपने भिक्षुओं के बीच गये एक रूमाल को लेकर। कभी वे किसी चीज को हाथ मे लेकर आते न देखे गये थे। रेशमी रूमाल को लेकर वे उस दिन आये। बैठ गये हैं मंच पर। उन्होंने उस रूमाल मे पांच गठानें लगालीं। भिक्षु बड़े हैरान हैं कि वो क्या कर रहे हैं। फिर उन्होंने उन भिक्षुओं से पूछा कि भिक्षुओ, ये रूमाल तुमने देखा था अभी थोड़ी देर पहले जब इसमें गांठें न थीं। अब इसमें गांठें हैं। मैं तुमसे पूछता हूं कि कुछ फर्क पड़ा या नहीं ? रूमाल वही है कि दूसरा हो गया है ?

एक भिक्षु ने कहा दूसरा हो गया है, क्योंकि उस रूमाल में गांठें न थीं। इस रूमाल में गांठें हैं। बुद्ध ने पूछा, भिक्षुओ इनसे राजी हो ? अधिकतम भिक्षु राजी हो गये कि ये बात ठीक है कि अब ये रूमाल वो न रहा, क्योंकि उस रूमाल में गांठें न थीं और इस रूमाल में गांठें हैं। सिर्फ एक भिक्षु हंसता रहा। बुद्ध ने कहा तुम राजी नहीं हो ? उसने कहा कि नहीं। मैं राजी नही हूं। क्योंकि अगर हम रूमाल के भीतर प्रवेश करके देख सकें तो रूमाल वही , गांठों से क्या फर्क पड़ता है। कहीं कहीं घुम गया है, मुड़ गया है। जहां मुड़ा हुआ नहीं है, रूमाल वही का वही है, कोई भी फर्क नहीं पड़ता है। और चाहें तो गांठें खोल लें, रूमाल वही का वही हो जायेगा। रूमाल की आत्मा मे कोई भी

फर्क नहीं पड़ता है। रूमाल अब भी वही है। गांठें उसके सिर्फ रूप पर बंध गयी हैं।

बुद्ध ने कहा, मैं इसे खोलना चाहता हूं। और उन्होंने रूमाल को जोर से खींचा। अनेक लोग खोलने के लिये खींचने लगते हैं। वे गांठें और बंध गयीं। क्योंकि खींचने से कभी कोई गांठ खुली है? प्रयत्न से कभी कोई गांठ नहीं खुलती। प्रयत्न खींचना है। बुद्ध ने जोर से खींचा। गांठें और बारीक व पतली हो गयीं। बुद्ध ने कहा, भिक्षुओ, क्या मेरे और खींचने से और बंध जायेंगी? एक भिक्षु ने कहा, 'आप बड़ा उल्टा कर रहे हैं। खींचने से और बंध जायेंगी। तो बुद्ध ने कहा, तो फिर मैं क्या करूं? मुझे ये गांठें खोलनी हैं। तो एक भिक्षु ने खड़े होकर कहा कि कृपा करके पहले यह देखने की कोशिश करें कि गांठें कैसे बांधी गयी थीं। और जिस तरह बांधी गयी हैं उसके उल्टे लौट जायें तो गांठें खुल जायेंगी। और आप तो बांधने की दिशा में ही खींचते चले जा रहे हैं। तो गांठें और बंध जायेंगी।

बुद्ध ने गांठें खोलीं और पूछा कि भिक्षुओ, ये रूमाल अब वही है? तो जिन्होंने कहा था कि हां, गांठ लगने से बदल गया है, उन्होंने कहा कि हां, रूमाल बीच में बदल गया था, अब वही है। लेकिन वह एक भिक्षु हंसता रहा और उसने कहा, रूमाल तब भी वही था। गांठ लगी थी तब भी वही था और अब भी वही है। और रूमाल राख हो जाये तब भी वही रहेगा, धूल हो जाये तो भी वही रहेगा, रहे तो भी वही रहेगा, न रहेगा, तो भी वही रहेगा। जो भीतर है शाश्वत, वो सदा वही रहेगा।

तथाता से जो स्थित-प्रज्ञ की तरफ जाता है उसका मतलब ये नहीं हैं कि उसमें लहरें नहीं आतीं, उसका ये मतलब नहीं है कि वो युद्ध में लड़ने नहीं जाता, उसका ये मतलब नहीं है कि वो क्रोध नहीं करता, वो प्रेम नहीं करता। ये सब होता है लहर की तरह। लेकिन भीतर वो अनबंधा गांठ के बाहर ही रह जाता है।

कृष्ण ठीक-ठीक प्रतीक हैं स्थित-प्रज्ञ के, इसलिये युद्ध में लड़ भी पाते हैं, प्रेम भी कर पाते हैं, झगड़ा भी कर पाते हैं और फिर भी कोई फर्क नहीं पड़ता है। और इसलिये वो अर्जुन से कह सके—अर्जुन घबड़ा गया पूछने लगा कि अब तो मेरा मन घबड़ाता है। ये सब प्रियजन, मित्र हैं, इनको मारूं? तो कृष्ण ने बड़ी हिम्मत की बात कही जो इस पृथ्वी पर और किसी आदमी ने कभी भी नहीं कही है। उन्होंने कहा कि तू पागल है अगर तू सोचता है कि तू इन्हें मार सकता है जो सोचते हैं कि इन्हें हम बचा सकते हैं वे पागल हैं। जो सोचते हैं कि इन्हें हम मार सकते हैं वे भी पागल हैं, क्योंकि जो मरने वाला है वो मरेगा ही और जो नहीं मरने वाला है उसे मरने का कोई उपाय नहीं है। तू मजे से लड़। क्योंकि जो नहीं मरने वाला है वो नहीं मरेगा। जो मरने वाला है वो तेरे बचाने से नहीं बचेगा। जो मरने वाला है वो मरा ही हुआ है और जो नहीं मरने वाला है वो नहीं ही मरा हुआ है। तू मजे से लड़।

स्थित-प्रज्ञ तथाता से अगर कोई पहुंचेगा तो उसका ये अर्थ है कि जीवन जैसा बाहर है वो स्वीकार है। लेकिन इन सारी लहरों के बीच में भीतर कुछ है जो लहरों को छूता भी नहीं है, स्पर्श भी नहीं करता है, अछूता रह जाता है।

एक फकीर से मरते वक्त किसी ने पूछा था कि तुमने जीवन किस भांति गुजारा, क्योंकि तुम्हारी आंखों में बड़ी चमक है, तुम्हारे चेहरे पर बड़ी शांति है और तुम्हारे हृदय में बड़ा संगीत है, तुमने जीवन कैसे गुजारा? मरते मरते उस फकीर ने आखिरी वाक्य कहे। उसने कहा कि मैं जिन्दगी से ऐसे गुजरा जैसे कोई आदमी नदी से गुजरे, पानी उसे छुए लेकिन फिर भी वह आदमी अनछुआ रह जाये, अन-टच्ड रह जाये। जैसे किसी पर हम जंजीरें बांध दें, रस्सियां बांध दें। वो आदमी बंधा भी हो जाय बाहर से और भीतर से अनबंधा भी रह जाय। वो कहे कि बाहर से मैं बंधा भी

था और भीतर से अनबंधा भी था। बाहर से मैं रूप था और भीतर से मैं अरूप था। बाहर से आकार था, भीतर से निराकार था। बाहर से संसार था, भीतर से परमात्मा था।

स्थित-प्रज्ञ का अर्थ है भीतर से इतनी शांति की बाहर की कोई अशांति उसे मिटा न पाती हो। वह अछूती रह जाती हो, अस्पर्शित रह जाती हो। लेकिन अगर कोई उपेक्षा से या वैराग्य से जायेगा तो ऐसी शांति पर नहीं पहुंचेगा। वह ऐसी शाँति पर पहुंचेगा जहां लहर रोक दी गयी हवा को रोककर, जहां कंपना रोक दिया गया ज्योति का, हवा को रोक कर। लेकिन अगर कोई तथाता से टोटल एक्सेप्टेबिलिटी से, जिसका मैंने ध्यान कहा उससे पहुंचेगा स्थित-प्रज्ञता को तो जीयेगा और जीवन के बाहर रह जायेगा। एक ही साथ संसार में होगा और संसार उसके भीतर नहीं होगा। वो संसार में होगा। और संसार उसके भीतर नहीं होगा। वो सबके बीच में होगा और सबके बाहर होगा। ऐसा अर्थ है स्थित-प्रज्ञ का, वह ध्यान की अंतिम पूर्णाहुति है, ध्यान का अन्तिम फल है।

ये थोड़े से प्रश्न पर मैंने बातें कीं जो आपकी साधना में सहयोगी हो सकें, उस दृष्टि से। मेरी बातों को इतनी शांति व प्रेम से सुना उससे बहुत अनुगृहीत हूं। और आशा करता हूं कि ध्यान की प्रक्रिया को जारी रखेंगे, ताकि किसी दिन वो क्षण आ जाय कि संसार में हों और संसार आपके भीतर न रहे। अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

★★★

आचार्य श्री के आगामी देश व्यापी कार्यक्रम

दिनांक	स्थान	कार्यक्रम	संयोजक
१५ तथा २० जून ७०	बंबई	—	श्री ईश्वर बाबू, जीवन जागृति केन्द्र, रूम नं० ५३, एम्पायर बिल्डिंग, डा० डी० एन० रोड, बम्बई : १ फोन : २६४५३०
१६, १७, १८ एवं १९ जून ७०	पोरबंदर	प्रवचन	श्री चुनीभाई देवाणी देवाणी वाच एजेंसी महात्मा गांधी रोड, पोरबन्दर, (सौराष्ट्र)
२७ एवं २८ जून ७०	जबलपुर शहीद स्मारक	प्रवचन	श्री भीकमचंद, जीवन जागृति केन्द्र ३८९, हनुमानताल, जबलपुर। फोन : २९५७
१, २, ३, ४ एवं ५ जुलाई ७०	बंबई	साधना-शिविर	श्री ईश्वर बाबू, जीवन जागृति केन्द्र, रूम नं. ५३, एम्पायर बिल्डिंग, डा० डी. एन. रोड,बंबई : १ फोन : २६४५३०

आचार्य श्री का प्रकाशित साहित्य

	हिन्दी	गुजराती	मराठी
१. साधना पथ	३।००	३।००	३।००
२. क्रांति बीज	३।००	२।५०	२।५०
३. सिंहनाद	१।५०	१।२५	३।००
४. मिट्टी के दिए	३।००	३।५०	—
५. पथ के प्रदीप	३।००	३।८०	८।००
६. संभोग से समाधि की ओर	३।५०	३।५०	—
७. आचार्य रजनीश समन्वय, विश्लेषण, संसिद्धि	७।५०	—	—
८. मैं कौन हूं ?	२।००	२।००	—
९. नए संकेत	२।००	१।७५	—
१०. अज्ञात की ओर	२।००	२।००	—
११. सत्य की खोज	३।००	—	—
१२. अंतर्यात्रा	३।५०	—	—
१३. शांति की खोज	२।००	—	—
१४. सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण	१।२५	१।५०	—
१५. सूर्य की ओर उड़ान	१।००	१।००	—
१६. प्रेम के पंख	०।७५	०।७५	०।७५
१७. कुछ ज्योतिर्मय क्षण	१।००	०।७५	—
१८. अमृत कण	०।६०	०।५०	०।५०
१९. अहिंसा दर्शन	०।५०	०।५०	०।५०
२०. नई दिशा, नई बात	०।३०	—	—
२१. सत्य की पहली किरण	६।००	—	—
२२. प्रभु को पगडंडिया	४।००	—	—
२३ क्रांति के बीच सबसे बड़ी दीवार	०।३०	—	—
२४. बिखरे फूल	०।३५	—	—
२५. जीवन और मृत्यु	—	१।००	—
२६. नए मनुष्य के जन्म की दिशा	०।७५	०।७५	—
२७ अस्वीकृति में उठा हाथ (भारत, गांधी और मेरी चिंता)	५।००	—	—

प्राप्ति स्थल :

[१] जीवन जागृति केन्द्र, रूम नं. ५३, एम्पायर बिल्डिंग, डा० डी. एन. रोड, बंबई : १

[२] मोतीलाल बनारसी दास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली–७।

[३] स्वदेशी वस्तु भंडार, जामनगर।

[४] आर. अंबानी एंड कं०, अपोजिट : जिमखाना, राजकोट।

[५] चंद्रकांत पटैल, आसोपालव, बैंक आफ इंडिया के सामने, रावपुरा, बड़ौदा।

[६] मोतीलाल बनारसी दास, नेपाली खपरा वाराणसी।

[७] मोतीलाल बनारसीदास, अशोक राजपथ, पटना।

[८] भारतीय संस्कृति भवन, माई हीरागेट जलंधर शहर।

[९] नरसिंह भाई पटैल, सहकारी मुद्रणालय, कोठारी मार्ग, सुरेंद्र नगर।

[१०] सस्तु किताब घर, पथ्थर कुवां, रिलीफ रोड, अहमदाबाद।

[११] बालगोविंद कुबेरदास, गांधी रोड, अहमदाबाद।

[१२] सर्वोदय साहित्य भंडार, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर—२

[१३] हीराभाई मेहता, पांचघर, ७०, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता : १

[१४] सुषमा साहित्य मंदिर, जवाहरगंज, जबलपुर।

[१५] युनिव्हर्सल बुक सर्विस, सिटी कालेज के सामने, जबलपुर।

[१६] श्री आर. के. पुंगालिया, १०१, टिम्बर मार्केट, पूना–२

[१७] श्री महेन्द्र कुमार मानव, विन्ध्याचल प्रकाशन, छतरपुर (म० प्र०)

[१८] श्री सौभाग्यचंद्र तुरखिया, २ प्रभात सोसाइटी, सुरेन्द्र नगर।

STRESSCON CORPORATION

FOR

ANYTHING & EVERYTHING

IN

PRECAST PRESTRESSED CONCRETE

CONSTRUCTION

202, Lal Bahadur Shastri Marg,

Ghatkopar,

Bombay - 86 AS

Telephones : 582593 & 582594

Gram - Newkumar

Phone - 251868
297463

EMKAY TRADERS

Stockists of Imported & Indian
Spare Parts for Diesel Engines
& Tractors

*

Specialists In

FUEL INJECTION EQUIPMENTS

Authorised Dealers For :

MOTOR PAL' Fuel Injection Equipments

Western brand Cylinder Liners

9-OAK Lane,
Bombay-1

*

उत्तम तम्बाखू और कुशल कारीगरों से बनी

शेर और पहलवान छाप बिड़ी

भारत में अग्रणी है

मोहनलाल हरगोविंददास

जबलपुर म० प्र०

मानसेवी संपादक : अरविन्द कुमार । सह-संपादक : आलोक कुमार पाण्डे । व्यवस्थापक : श्री आर. आर. मिश्रा

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्द कुमार, कमला नेहरू नगर, जबलपुर ।

मुद्रण : श्रीपाल प्रिंटर्स, राजा गोकलदास महल, से मानसेवी संपादक अरविन्द कुमार के लिये मुद्रित

वर्ष : १ ॥ अंक : २४ ॥ १६ जून १९७० ॥ मूल्य : एक प्रति : ०.६० न० पै०

॥ वार्षिक : १२ रु० ॥

PLASTICIZERS

For the

Plastics Paint & Perfumery Industries

DOP—Dioctyl Phthalate

DIOP—Di-iso Octyl Phthalate

DAP—Dialphanyl Phthalate

610 P—Dialfol 610 Phthalate

DBP—Dibutyl Phthalate

DMP—Dimethyl Phthalate

DEP—Diethyl Phthalate

Available from :-

Pioneers in manufacture of Phthalate Plasticizers.

INDO-NIPPON CHEMICAL COMPANY LIMITED

Alice Building, 339, D. N. Road, Bombay - 1

Gram - Plasticizer Telex - Innipon 011 (2081) Phone - 251723
252269